खंड 2
सामाजिक संरचना और प्रथाएँ

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY

इकाई 3 जनजाति*

इकाई की रूपरेखा

3.0 उद्देश्य

3.1 प्रस्तावना

3.2 जनजाति को समझना

3.2.1 भारत में जनजातियों के विशिष्ट लक्षण

3.3 मध्य भारत में आदिवासियों की सामाजिक-आर्थिक स्थितियाँ

3.3.1 आजीविका तक पहुँच से संबंधित मुद्दे

3.3.2 कृषि नीतियां, भूमि कानून और आदिवासियों के बीच भूमि निसंबंध

3.4 जनजातियाँ और वन

3.4.1 भूमि और आजीविका का नुकसान

3.4.1.1 स्वतंत्रापूर्व के भारत में भूमि और आजीविका का नुकसान

3.4.1.2 स्वतंत्रता के पश्चात् भारत में भूमि और आजीविका का नुकसान

3.4.2 विनियम और प्रतिरोध

3.4.3 भूमि के मुद्दे पर नए तरह का संघर्ष

3.4.4 जनजातीय 'अशांति'

3.5 सारांश

3.6 संदर्भ

3.7 बोध प्रश्नो के उत्तर

3.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद, आपको निम्नलिखित करने में सक्षम होना चाहिए :

- भारत में जनजातियों की विशिष्ट विशेषताओं का वर्णन करना;
- आदिवासियों की सामाजिक-आर्थिक स्थितियों पर चर्चा;
- आदिवासियों के बीच कृषि नीतियों, भूमि कानूनों और भूमि अलगाव की व्याख्या करना;
- विनियम और प्रतिरोध पर चर्चा; और
- भूमि के मुद्दे पर नए तरह के संघर्ष का वर्णन करना।

3.1 प्रस्तावना

'जाति' पर पिछली इकाई में आपने 'जाति' के बारे में सीखा जो कि भारतीय समाज की सबसे महत्वपूर्ण संस्था है। यहाँ इस इकाई 3 "जनजाति" में, हमने विशेष रूप से ट्राइब्स या भारत में "जनजाति" का वर्णन किया है।

भारत में जनजातियों का अध्ययन और लेखन कई विद्वानों द्वारा किया गया है। इस इकाई में हम भारत में जनजातीय समुदायों से संबंधित कुछ प्रमुख मुद्दों पर चर्चा करेंगे। उन्हें अधिकतर सामाजिक जीवन की मुख्यधारा से बाहर रखा गया है और वे आजीविका के अपने

* डॉ. टी. गांगमी,दि.वि./अनु. शास्वत कुमार

मूल स्रोतों से वंचित हैं। वे अक्सर अपनी सामाजिक-सांस्कृतिक परंपराओं से पृथक कर दिए जाते हैं। वे अपनी गरिमा और निर्भरता की हानि का अनुभव करते हैं। सरकार की नीतियों का जनजातीय समाजों पर नकारात्मक और सकारात्मक दोनों प्रभाव पड़ा है, जिसके परिणामस्वरूप इन नीतियों के लिए जनजातीय प्रतिक्रियाएँ अलग-अलग हैं। नीति-निर्माताओं के बीच आदिवासी उत्थान की बड़ी चिंता है।

3.2 जनजाति को समझना

लैटिन शब्द 'ट्राइब्स' से व्युत्पन्न, जनजाति शब्द का अर्थ है एक निवास स्थान। यह एक समुदाय बनाने वाले व्यक्तियों के समूह को दर्शाता है जो एक पूर्वज के वंश होने का दावा करता है। 'जनजाति' शब्द (मुंशी, 2013) का उपयोग भारत में औपनिवेशिक सरकार द्वारा जाति शब्द से अलग समूहों की एक बड़ी संख्या को वर्गीकृत करने के लिए किया गया था। जनजाति शब्द समुदाय के जनसांख्यिकीय आकार, भाषाई और सांस्कृतिक लक्षणों, पारिस्थितिक स्थितियों और जीवन की भौतिक स्थितियों के संदर्भ में एक दूसरे से बहुत अलग है। जनजातियाँ अनिवार्य रूप से 'आदिम' हैं, और 'पिछड़ी' हैं। स्वतंत्रता के बाद, 'अनुसूचित जनजाति' (एसटी) शब्द का इस्तेमाल उन जनजातियों को निरूपित करने के लिए किया जाने लगा, जिन्हें भारत के संविधान के तहत अनुसूचित किया गया है। आदिवासी समुदाय सापेक्ष अलगाव, सांस्कृतिक विशिष्टता और उत्पादन और निर्वाह के निम्न स्तर के कारण अन्य समुदायों से अलग हैं। वे मूल निवासी हैं। उनके लिए कई शब्द इस्तेमाल किए जाते हैं जैसे 'आदिवासी' (प्रारंभिक निवासी जनसमूह), 'वनवासी' (जंगलों के निवासी), 'वन्यजाति' (आदिम लोग), 'जनजाति (लोक जनसमूह), और 'अनुसूचित जाति' (एसटी)।

डब्ल्यू, एच. आर. रिवर्स ने जनजाति को एक सरल एक सामाजिक समूह कहा है, जिसके सदस्य एक सामान्य बोली बोलते हैं, एक ही सरकार है और युद्ध जैसे सामान्य उद्देश्यों के लिए एक साथ कार्य करते हैं। (चौधरी, 1977)

2011 की जनगणना में भारत में अनुसूचित जनजातियों को अधिसूचित किया गया है जो भारत के 30 राज्यों में अधिसूचित हैं। अनुसूचित जनजातियों के रूप में अधिसूचित व्यक्तिगत जातीय समूहों की संख्या 705 है।

बॉक्स 3.1: आदिवासी और ब्रिटिश नीति

आदिवासियों के प्रति ब्रिटिश नीति के दो प्रमुख तत्व थे। सबसे पहले, इसने आदिवासी क्षेत्रों को मुख्यधारा से अलग करने का पक्ष लिया (भौमिक 1980, चौधरी 1982)। इस प्रकार 'बहिष्कृत' और/या आंशिक रूप से बहिष्कृत क्षेत्रों की अवधारणा दी गई थी। क्योंकि ब्रिटिश आदिवासी नीति राजनीतिक और औपनिवेशिक थी, ब्रिटिश प्रशासन को डर था कि अगर इन आदिवासियों (धनुष-बाण सशस्त्र आदिवासियों को अक्सर उग्रवादी, बेलगाम और जंगली के रूप में चिह्नित किया जाता है) का भारतीय समाज की मुख्यधारा से संपर्क हुआ, तो स्वतंत्रता आंदोलनों को और मजबूती मिलेगी। इस पृष्ठभूमि में, उन्हें अलग-थलग करना, प्रशासनिक और राजनीतिक रूप से, उन क्षेत्रों के लिए तर्कसंगत लगता था, जिनमें मुख्यतः जनजातीय आबादी थी।

दूसरे, सुधार के स्तर पर, ब्रिटिश प्रशासन इन लोगों को 'सभ्य' करने में रुचि रखता था। एक जनजातीय-केंद्रित मूल्यांकन में, आदिवासियों को श्रेष्ठता के चरण के साथ देखा गया था। उदविकास के शास्त्रीय सिद्धांत, जिसने तत्कालीन आदिम जनजाति को और बर्बरता के अवशेषों या बची प्रारंभिक स्तर के मानवता प्रजाति के रूप में नब्बे के दशक के अंत और बीसवीं सदी की शुरुआत में अकादमिक ध्यान आकर्षित किया

था, सर ई.बी. टाइलर, के शब्दों में, यह पहाड़ी आबादी या विरल इलाके में आबादी और कठिन संचार के साथ रहने वाले लोग 'सामाजिक जीवाष्म' थे। उनका मानना था कि इनका अध्ययन, मानव अस्तित्व के प्रागैतिहासिक चरणों को उजागर करेगा (IGNOU (पुनर्मुद्रण): 2017 ईएसओ -12 ब्लॉक 6, ट्राइब्स इन इंडिया)

3.2.1 भारत में जनजातियों के विशिष्ट लक्षण

1) **निश्चित सामान्य स्थलाकृति**

आदिवासी लोग एक निश्चित स्थलाकृति के भीतर रहते हैं और यह उस क्षेत्र पर निवास करने वाले एक विशेष जनजाति के सभी सदस्यों के लिए एक आम जगह है। एक सामान्य लेकिन निश्चित रहने की जगह के अभाव में, आदिवासी एक आदिवासी जीवन की अन्य विशेषताओं को खो देंगे, जैसे कि आम भाषा, रहने का तरीका और सामुदायिक भावना आदि।

2) **एकता की भावना**

एक वास्तविक आदिवासी जीवन के लिए एकता की भावना एक अपरिहार्य आवश्यकता है। जनजाति का अस्तित्व शांति और युद्ध के समय आदिवासियों की एकता की भावना पर निर्भर करता है।

3) **अंतर्विवाही (Endogomos) समूह**

आदिवासी लोग आमतौर पर अपने जनजाति के बाहर शादी नहीं करते हैं और जनजाति के भीतर शादी की बहुत सराहना की जाती है। लेकिन गतिशीलता की शक्तियों के कारण हुए परिवर्तनों के दबाव के प्रभाव ने भी आदिवासियों के रवैये को बदल दिया है और अब, अंतर-जनजातीय विवाह अधिक से अधिक आम हो रहे हैं।

4) **आम बोली**

एक आदिवासी समुदाय के सदस्य एक सामान्य बोली में अपने विचारों का आदान-प्रदान करते हैं। यह तत्व उनकी एकता की भावना को और मजबूत करता है।

5) **रक्त-संबंध की मर्यादा**

रक्त-सम्बन्ध सबसे बड़ा बंधन है और सबसे शक्तिशाली ताकत है जो आदिवासियों में एकता की भावना पैदा करता है।

6) **सुरक्षा जागरूकता**

जनजातीय लोगों को हमेशा घुसपैठ और घुसपैठियों से सुरक्षा की आवश्यकता होती है और इसके लिए एक एकल राजनीतिक प्राधिकरण की स्थापना की जाती है और सभी शक्तियाँ इस अधिकार में निहित होती हैं। आदिवासी की सुरक्षा को राजनीतिक अधिकार का आनंद लेने वाले व्यक्ति की कुशलता और मानसिक शक्ति पर छोड़ दिया जाता है। आकस्मिक आपदा के समय एक आदिवासी समिति अपने मुखिया की सहायता के लिए तत्पर रहती है। जनजाति को कई छोटे समूहों में विभाजित किया गया है और प्रत्येक समूह का नेतृत्व अपने स्वयं के नेता द्वारा किया जाता है।

7) **विशिष्ट राजनीतिक संगठन**

हर जनजाति का अपना अलग राजनीतिक संगठन है जो आदिवासी लोगों के हितों की देखभाल करता है। पूरा राजनीतिक अधिकार एक आदिवासी मुखिया के हाथों में होता है। कुछ जनजातियों में, जनजाति के हितों में अपने कार्यों का निर्वहन करने में आदिवासी मुखिया की मदद करने के लिए आदिवासी समितियां मौजूद होती हैं।

8) **सामान्य संस्कृति**

एक जनजाति की सामान्य संस्कृति एकता की भावना से उत्पन्न होती है, जो एक सामान्य भाषा, सामान्य धर्म, आम राजनीतिक संगठन को साझा करने पर निर्भर करती है। आम संस्कृति आदिवासियों के बीच एकरूपता पैदा करती है।

9) **नातेदारी का महत्व**

नातेदारी आदिवासी सामाजिक संगठन का आधार बनती है। अधिकांश जनजातियाँ बहिर्मुखी कुलों और वंशों में विभाजित हैं।

10) **समतावादी मूल्य**

आदिवासी सामाजिक संगठन समानता के समतावादी सिद्धांत पर आधारित होती है। इस प्रकार कोई संस्थागत असमानताएं नहीं हैं जैसे कि जाति व्यवस्था या लिंग आध ारित असमानताएं। इस प्रकार पुरुषों और महिलाओं को समान दर्जा और स्वतंत्रता मिली। हालाँकि, सामाजिक असमानता के कुछ अंश आदिवासी प्रमुखों या जनजातीय राजाओं के मामले में पाए जा सकते हैं, जो उच्च सामाजिक स्थिति का आनंद लेते हैं, राजनीतिक अधिकार प्राप्त करते हैं और धन अर्जित करते हैं।

11) **धर्म का सरल रूप**

जनजातियाँ कुछ मिथकों और धर्म के एक अल्पविकसित प्रकार में विश्वास करती हैं। इसके अलावा, वे उन कुलदेवताओं पर विश्वास करते हैं जो प्रतीकात्मक वस्तु होते हैं और जनजाति के सदस्यों के साथ रहस्यवादी संबंध रखने वाले तत्वों को दर्शाते हैं

बोध प्रश्न 1

नोट :1) अपने उत्तरों के लिए नीचे दिए गए स्थान का प्रयोग कीजिए।

2) इकाई के अंत में दिए गए उत्तरों से अपने उत्तर मिलाइए।

1) लगभग पाँच पंक्तियों में जनजाति की परिभाषा दीजिए।

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

2) जनजातियों की कम से कम दो प्रमुख विशेषताओं की सूची बनाएं।

.....

.....

.....

.....

.....

.....

3.3 मध्य भारत में आदिवासियों की सामाजिक-आर्थिक संबंध

आदिवासी समुदाय की पहचान विशेष रूप से भारत के केंद्रीय क्षेत्र में आज भूमि विसंवधन और विकास परियोजनाओं के लिए वन और अन्य सामान्य संपत्ति संसाधनों के बढ़ते वंचन के कारण भूमि और अन्य संसाधनों तक पहुंच में गिरावट के साथ जुड़ी है। जिसके परिणामस्वरूप, जनजातीय आबादी का अनुपातिक रूप से उच्च प्रतिशत उनके निर्वहण के पारंपरिक तरीके से उचित पुनर्वास के बिना विस्थापित हो गया है। (सराप, 2017)

विभिन्न जनजातियों (705) से संबंधित कुल 104.3 मिलियन लोगों में से, प्रत्येक पांचवा व्यक्ति भारत के दिल में निवास करता है जिसमें राजस्थान, गुजरात, महाराष्ट्र, मध्य प्रदेश, छत्तीसगढ़, झारखंड, कर्नाटक, आंध्र प्रदेश, तेलंगाना, ओडिशा और पश्चिम बंगाल राज्य शामिल हैं (भारत सरकार, 2011)। इन राज्यों में रहने वाले आदिवासियों की सामाजिक-आर्थिक स्थिति, कई मायनों में, पूर्वोत्तर भारत में रहने वाले लोगों से अलग है। इसका कारण यह है कि ये मुख्य रूप से अत्यधिक गरीबी केन्द्रिक वन-आधारित क्षेत्र हैं, इन क्षेत्रों में आदिवासी उत्तर-पूर्व भारत की तुलना में सामाजिक और आर्थिक रूप से बहुत निचले स्तर पर हैं। ऐसे लोगों के सामने गरीबी की समस्या बहुआयामी है जिसमें आय, और मानव असुरक्षा भी सम्मिलित है। (कन्नन और रवीन्द्रन, 2011, राधाकृष्ण 2015, और सराप 2017)

राज्यों के भीतरी इलाकों में रहने वाले आदिवासियों के लक्षण हैं: संपत्ति के निम्न स्तर, मानव पूंजी के निम्न स्तर, निर्णय लेने की प्रक्रिया में राजनीतिक भागीदारी की कमी और राजनीतिक आवाज (डी हैन एंड दुबे, 2005) की कमी। इसके अलावा, वे कई अभावों (बख्शी, चावला और शाह, 2015) और मानव असुरक्षा से घिरे रहते हैं। (सराप, 2017)।

आदिवासी गरीबी के प्रमुख कारणों में सुरक्षित उत्पादक संसाधनों जैसे भूमि, जंगल, अन्य सामान्य संपत्ति संसाधन जैसे चराई के मैदान, तालाब, टैंक आदि) तक पहुंच का अभाव है, सबसे महत्वपूर्ण निर्णय लेने की प्रक्रिया में उनकी अपर्याप्त भागीदारी है। संसाधनों पर हक न होने के नुकसान ने न केवल उनकी आजीविका को प्रभावित किया है, बल्कि उन्हें गरीब बना दिया है। विभिन्न प्रकार के संसाधनों तक उनकी पहुंच में निरंतर क्षरण हो रहा है, जिस पर आदिवासी अपनी आजीविका के लिए निर्भर हैं। अन्य क्षेत्रों की तुलना में मध्य भारत के आदिवासी समुदायों में गरीबी का स्तर अधिक है। (राधाकृष्ण, रवि और रेड्डी, 2013)। भूमि विसंबंधन और ऋणग्रस्तता के कारण वे हाशिए पर हैं (सराप, 2017)। बिचौलियों द्वारा स्थानीय व्यापारियों को उनके कृषि और वन उत्पादों की बिक्री की समस्या है। यहां तक कि आदिवासी श्रम का बाजारीकरण किया गया है (सराप और स्प्रिंगेट-बैगिंस्की, 2013)। राज्य प्रायोजित कार्यक्रमों का जनजातीय क्षेत्रों में प्रदर्शन खराब है। स्वास्थ्य शिक्षा और प्रशिक्षण जैसे मानव विकास के रूप में उनका प्रदर्शन अप्रभावी है (भारत सरकार 2014)।

राष्ट्र में अन्य समुदायों की तुलना में आदिवासी समुदायों के बीच साक्षरता दर धीमी गति से बढ़ रही है। (सराप 2017) आदिवासी लोगों के पुरुष और महिला साक्षरता दर के बीच अंतर के अलावा विभिन्न जनजातीय समुदायों के बीच साक्षरता के स्तर में अंतर है। शिशु मृत्यु दर, रुग्णता, कुशल स्वास्थ्य देखभाल जैसे स्वास्थ्य संकेतक भी बहुत खराब हैं। महिला प्रधान परिवारों को जनजातीय समुदाय के बीच देखा जा सकता है। महिलाओं द्वारा आधारित बाल गरीबी और नुकसान बहुत अधिक हैं। महिलाएं वंचित समूहों में दूरस्थ क्षेत्रों में स्थित होने के कारण कई प्रकार के भार से पीड़ित हैं। शिक्षा और स्वास्थ्य देखभाल की गुणवत्ता तक उनकी पहुंच अपर्याप्त हैं (डी हैन 2004 द वर्ल्ड बैंक, 2011)। आदिवासी परिवार विभिन्न कल्याण कार्यक्रमों और उनके जनसांख्यिकीय, व्यावसायिक और शैक्षिक स्तरों में बदलावों के बावजूद गरीब होते हैं। (किजिमा, 2006)। मध्य भारत में आदिवासी बहुल क्षेत्रों की विशेषता सड़कों, बाजारों, चिकित्सा और शैक्षिक सुविधाओं की खराब पहुंच है। जनजातीय क्षेत्रों के अवसंरचना से वंचित होने से वस्तुओं के उत्पादन और विपणन के परिवहन और लेनदेन की लागत में वृद्धि होती है, और जनजातीय लोगों के लिए बुनियादी सेवाओं तक पहुँचने में कठिनाई पैदा होती है। आदिवासी क्षेत्रों की दूरियां उनकी वाणिज्यिक और अंतरराष्ट्रीय समस्याओं को बढ़ाती है।

इससे जनजातीय अर्थव्यवस्था के परिवर्तन की संभावना कम हो जाती है। कम कृषि उत्पादकता और उनके श्रम के लिए कम रिटर्न को देखते हुए (किजिमा, 2006, सराप 2017 देखें), आदिवासी लोगों के लिए उपलब्ध शुद्ध अधिशेष सीमांत या नकारात्मक है। आदिवासी क्षेत्र खनिज और अन्य संसाधनों से समृद्ध हैं, लेकिन ऐतिहासिक रूप से, आदिवासी समुदायों को इस धन का एक हिस्सा देने से इनकार कर दिया गया है। इस तरह के संसाधनों का स्वामित्व उनके पास होता है क्योंकि वे उस जमीन के नीचे पाए जाते हैं जो आदिवासियों के पास है लेकिन उन्हें छोटे संसाधनों के उपयोग से बाहर रखा गया है। उन्हें बिजली उत्पादन और सिंचाई के लिए खनिजों और जल संसाधनों को निकालने की अनुमति नहीं है। परिणामस्वरूप, उन्हें विस्थापित किया गया है और 'प्रतिकूल समावेश' के अधीन किया गया है, जिसने उन्हें सामाजिक पदानुक्रम (चटर्जी, 2008) के सबसे निचले पायदान पर धकेल दिया है। आदिवासी क्षेत्रों में, भूमि और निवास के नुकसान और बांधों, खानों और उद्योगों के कारण वासभूमि क्षेत्र के विखंडन के परिणामस्वरूप पूर्ण वंचना होती है, (मुंशी, 2012, देखें सराप, 2017)। इन प्रतिकूल परिवर्तनों के कारण व्यक्तियों और समुदायों का निर्वासन हुआ है। अवसरों की कमी, अर्थात् विकास कार्यक्रमों की प्रक्रियाओं और लाभों से सामाजिक बहिष्कार के परिणामस्वरूप सापेक्ष अभाव भी है। आदिवासी समुदायों की आजीविका की स्थितियों में गिरावट के लिए जिम्मेदार, नीचे की गई चर्चा नीतियों सहित कई कारक हैं।

3.3.1 आजीविका तक पहुँच से संबंधित मुद्दे

जनजातीय लोगों की आजीविका के स्रोत तक पहुंच क्षेत्रीय संस्थागत और सरकारी (सहायता) पर निर्भर करती है। उन्हें न केवल अपनी आजीविका के स्रोतों में सुधार करना चाहिए, बल्कि मुख्यधारा बनाने की सुविधा भी प्रदान करनी चाहिए यानी उन्हें अन्य लोगों के करीब लाना और अन्य समुदायों और समाजों के साथ जनजातीय समुदायों का एकीकरण करना चाहिए। उनकी क्षमता बढ़ाने की भी जरूरत है। कृषि, वन और विकास नीतियों सहित सरकारी नीतियां इन समुदायों को उनके सतत सामाजिक-आर्थिक विकास के अवसर प्रदान करने के लिए महत्वपूर्ण हैं (डी हैन और दुबे, 2005)

3.3.2 कृषि नीतियां, भूमि कानून और आदिवासियों के बीच भूमि विसंबंध

आजीविका के एक प्रमुख स्रोत के रूप में भूमि कृषि उत्पादन और समृद्धि में प्रत्यक्ष और एक अनिवार्य भूमिका निभाती है, लेकिन जनजातीय आबादी के एक बड़े हिस्से की आजीविका के इस स्रोत तक पहुंच को व्यापक बनाने में राज्यों की कृषि नीतियां अपेक्षाकृत अप्रभावी रही हैं। इसका कारण इस तथ्य से माना जा सकता है कि स्वतंत्र भारतीय राज्यों ने निजी संपत्ति शासन को प्रोत्साहित किया है, लेकिन राज्य संपत्ति शासन जारी रहा और सामुदायिक भूमि की प्रणाली को स्वीकार नहीं किया गया। नतीजतन, निजी संपत्ति के रूप में जमीन का निपटान नहीं हुआ, जिससे ये अपने आप से राज्य की संपत्ति बन गई, जिसमें वनभूमि भी शामिल थी (एकहा, 2011, कुमार एंड कं., 2013, सराप और सारंगी, 2010)। हालांकि वनभूमि मुख्य रूप से आदिवासी समुदायों के स्वामित्व में थी। कई आदिवासी क्षेत्रों में, अपेक्षित सर्वेक्षण कभी नहीं किया गया था। इस प्रकार, वन भूमि के विशाल भाग पर इन लोगों के अधिकारों को कभी मान्यता नहीं दी गई थी, हालाँकि भूमि का स्वामित्व इन आदिवासी समुदायों (खाका , 2007, सराप 2017) के साथ में था। इसके अलावा, किसानों के बढ़ते दरिद्री-करण और हाशिए पर जाने से आदिवासियों की आजीविका प्रभावित होती रही है। नेशनल सैंपल सर्वे ऑफिस के आंकड़ों में आदिवासी परिवारों के बीच भूमिहीनता की बढ़ती प्रवृत्ति को दर्शाया गया है, जिसके कारण उनकी गरीबी बढ़ रही है । बिना किसी खेती की भूमि (भूमिहीनता) वाले परिवारों का प्रतिशत बढ़ता रहा है। यह उल्लेखनीय है कि जिन परिवारों के पास खेती या कृषि भूमि नहीं है, वे 1987-88 में 28 प्रतिशत से बढ़कर 2011-12 (करात और रावल, 2014) में 39 प्रतिशत हो गए हैं। इसी तरह, जिन आदिवासी परिवारों के पास कोई जमीन नहीं है, वे 13 से 25 फीसदी तक बढ़ गए हैं और ऐसे घर जिनके पास खुद की जमीन नहीं है, उसी अवधि (सराप, 2017) के दौरान 16 से 24 फीसदी तक बढ़ गए हैं।

बोध प्रश्न 2

नोट :1) अपने उत्तरों के लिए नीचे दिए गए स्थान का प्रयोग कीजिए।

2) इकाई के अंत में दिए गए उत्तरों से अपने उत्तर मिलाइए।

1) मध्य भारत के आदिवासियों की सामाजिक-आर्थिक स्थितियों पर संक्षिप्त चर्चा कीजिए। पांच लाइनों का उपयोग कीजिए।

.....

.....

.....

.....

.....

2) क्या मध्य भारत के आदिवासियों की वन भूमि तक पहुँच है?

.....

.....

.....

.....

3.4 जनजाति और वन

कुछ आदिवासी समूह अपने एकमात्र व्यवसाय के रूप में शिकार और भोजन एकत्र करने का कार्य करते हैं, लेकिन उनमें से अधिकांश किसान और खेतिहर मजदूर हैं। बाकी लोग घरेलू उद्योग, निर्माण कार्य, वृक्षारोपण, खनन और उत्खनन और अन्य सेवाओं में लगे हुए हैं। उनका एक छोटा वर्ग सरकार के सुरक्षात्मक उपायों से लाभ प्राप्त करता है, जैसे कि, शैक्षिक संस्थानों में आरक्षण, रोजगार और राजनीतिक आरक्षण लेकिन उनमें से अधिकांश स्वतंत्रता के बाद से पिछले सात दशकों के तथाकथित विकास की प्रक्रिया से हाशिए पर हैं। (मुंशी, 2013)।

अधिकांश आदिवासी समूह गैर-आदिवासी कृषि समुदायों की तुलना में कृषि और वन से अपनी आजीविका प्राप्त करते हैं। जंगल पर उनकी निर्भरता विभिन्न उद्देश्यों की पूर्ति करती है। उनके लिए वन और अन्य प्राकृतिक संसाधनों पर निर्भरता पर्याप्त है। उनकी कृषि गतिविधियाँ जंगल के साथ घनिष्ठ रूप से जुड़ी हुई हैं। जंगल, भोजन का एक प्रमुख स्रोत के रूप में घर के निर्माण के लिए लकड़ी और कृषि उपकरण, ईंधन लकड़ी, दवाइयां, और रोजमर्रा की जिंदगी की अन्य आवश्यकताओं के लिए रहा है, और आज भी उनकी जिंदगी का हिस्सा है। जंगल से पत्ते, फल, फूल, जड़ें, कंद आदिवासियों के आहार के लिए विशेषकर दुबले मौसम और सूखे की अवधि के दौरान एक महत्वपूर्ण पूरक है।

जंगलों से जंगली फल, जामुन और शहद एकत्र किए जाते हैं और खाए जाते हैं। बांस और लकड़ी कृषि और मछली पकड़ने के उपकरण बनाने के लिए आवश्यक हैं। जड़ी बूटी कई बीमारियों के लिए दवा के रूप में काम करती है। तेल और साबुन भी जंगल से इकट्ठा किए जाते हैं। वास्तव में, आदिवासियों की लगभग पचास से अस्सी प्रतिशत खाद्य आवश्यकताएं जंगल द्वारा प्रदान की जा सकती हैं। बांस, ईंधन की लकड़ी, तेंदू पत्ते (बीड़ी/सिगरेट को लपेटने के लिए इस्तेमाल की जाने वाली झाड़ियों से ली गई पत्तियां) और सूखे फल मेवे जैसे वन उपज की बिक्री आय के महत्वपूर्ण स्रोत हैं। आदिवासी लोगों की मान्यता है कि देवता और आत्माएं जंगल, पेड़ों और जानवरों में निवास करते हैं। वे उनकी भक्ति के विषय भी हैं। वन संसाधन आदिवासी समुदायों की सामग्री और आध्यात्मिक अस्तित्व के प्रमुख स्रोत हैं (मुंशी, 2013)।

औपनिवेशिक शासन के दौरान उन्नीसवीं शताब्दी के मध्य में पर्यावरणीय कारणों से वनों की रक्षा और पुनर्जीवित करने के उद्देश्य से, राजस्व और शाही उद्देश्यों के लिए, टिकाऊ आधार पर लकड़ी के उत्पादन को सुविधाजनक बनाने के लिए कई नियम पारित किए गए हैं । वनों और वन उपज के प्रबंधन से संबंधित कानूनों को बाद में 1927 के भारतीय वन अधिनियम में समेकित किया गया था। इसके परिणामस्वरूप, ईंधन की लकड़ी और बांस को हटाने और स्थानांतरित खेती को करने पर के बड़े पैमाने पर प्रतिबंध लगा दिया गया था। कई उदाहरणों में, चरागाह भूमि को 'अनारक्षित' और 'संरक्षित' जंगलों में शामिल किया गया, जिससे मौजूदा चराई व्यवस्था प्रभावित हुई। राज्य के नियंत्रण में भारत में वनों के बड़े पैमाने पर 'आरक्षित' वनों का निर्माण, जिनकी देखरेख और प्रबंधन वन विभाग करता है, जिसके परिणामस्वरूप वन समुदायों के प्रथागत अधिकारों पर प्रतिबंध उनके अस्तित्व को खतरे में डाल रहा है। इन समुदायों को वन अधिकारियों के हाथों बड़ी मुश्किलों का सामना करना पड़ा, जिन्होंने प्रतिबंधों को बहुत गंभीरता के साथ लागू किया और यहां तक कि विनियमन के एक मामूली उल्लंघन को अपराध माना गया।

अंग्रेजों द्वारा शुरू किए गए वन प्रबंधन ने जंगल के संवर्धित वाणिज्यिक मूल्य के परिणामस्वरूप सरकार के लिए राजस्व का एक महत्वपूर्ण स्रोत खोल दिया। रेलवे से शहरी केंद्रों, सैन्य छावनियों और हिल स्टेशनों की बढ़ती मांग, और सागौन के बढ़ते वाणिज्यिक

मूल्य और अन्य मामूली वन उपज को जंगलों के आर्थिक मूल्य में जोड़ा गया। वन विभाग द्वारा अनिवार्य रूप से बढ़ाई गई नियंत्रण की व्यवस्था कारण जंगल पर निर्भर लोगों द्वारा अधिक से अधिक वन अपराध और अपराध किए जाते हैं। आदिवासी नियंत्रण के तहत भूमि और जंगल, राज्य नियंत्रण और प्रबंधन के तहत लाए गए थे। औपनिवेशिक शासन के दौरान और स्वतंत्रता के बाद, भूमि के वंशाधिकार/गांव के स्वामित्व को मान्यता नहीं दी गई थी। इसके अलावा, स्थानांतरित कृषि को एक वैध कृषि पद्धति के रूप में करने की गैर-मान्यता उत्तर पूर्व को छोड़कर मौजूद थी। औपनिवेशिक राज के बाद भी भारतीय राज्य ने औपनिवेशिक नीति को विरोधाभासी रूप के साथ जारी रखा है, जिसके परिणामस्वरूप लाखों स्थानांतरित काश्तकारों का सदियों से अपने खुद के जंगलों पर कोई वैध अधिकार नहीं है।

भूमि और जंगल पर आदिवासी लोगों के पारंपरिक अधिकारों को न तो मान्यता दी गई और न ही दर्ज किया गया। वन भूमि पर राष्ट्रीय उद्यानों और अभयारण्यों के निर्माण ने इन समुदायों को उनके अस्तित्व के आधार से बाहर रखा। वनस्पतियों और जीवों के संरक्षण को एक तात्कालिक आवश्यकता के रूप में मान्यता दी गई थी, लेकिन वन और इसके उत्पादन के लिए आदिवासी अधिकारों का निपटान ईमानदारी और गंभीरता के साथ नहीं किया गया था, जो इसके हकदार थे और जो लोग वन भूमि का उपयोग करना जारी रखते हैं, उन्हें 'अतिक्रमणकारी' माना जाता है, उनसे वन छीन लिया गया है तथा उन्हें कोई भी सुरक्षा अधिकार नहीं प्राप्त है (मुंशी, 2013)।

3.4.1 भूमि और आजीविका का नुकसान

जबसे आदिवासियों को स्थानांतरित खेती से दूर रखा गया उनके आजीविका के स्रोत का नुकसान हुआ क्योंकि इसे व्यर्थ और विनाशकारी माना जाता था लेकिन ब्रिटिश सरकार ने इसे नियमित राजस्व का स्रोत माना और इसलिए, आदिवासियों को जोतने के लिए जमीन लेने के लिए प्रोत्साहित किया गया लेकिन मूल्यांकन की कम दरों पर। हालांकि, कृषि औजार की कमी, मिट्टी की खराब गुणवत्ता, लगातार फसल की विफलता और कठोर राजस्व की मांग, अक्सर किसानों, आदिवासियों और गैर-आदिवासियों, को बीज, उपभोग की वस्तुएं और यहां तक कि सरकार को राजस्व का भुगतान करने के लिए पैसे भी उन्हें ऋण की ऊंची दरों पर उन्हें लेने के लिए मजबूर करते हैं। कई हिस्सों में, ऋणग्रस्त वर्गों के लिए खेती की बढ़ती ऋणग्रस्तता और भूमि के हस्तांतरण की प्रवृत्ति में वृद्धि हुई है। इस तरह, एक शक्तिशाली वर्ग उभरा जिसने धन-उधार, व्यापार और शराब बेचने की संयुक्त गतिविधियों के माध्यम से बड़ी मात्रा में भूमि और धन एकत्र किया। इस प्रवृत्ति ने आदिवासियों को बंधुआ मजदूरों और पट्टेदारों की स्थिति में ला दिया है। इस प्रकार, एक कम निर्वाह से, आदिवासी पूरी तरह से अपने अस्तित्व के लिए जमींदार-साहूकारों, व्यापारियों, दुकानदार पर निर्भर हो गए। धन उधार देने वाले वर्ग द्वारा शोषण और उत्पीड़न ने न केवल उन्हें अत्यधिक गरीबी की अवस्था में लाया बल्कि उनके स्वाभिमान को भी कम कर दिया।

3.4.1.1 स्वतंत्र भारत में भूमि और आजीविका का नुकसान

निर्भरता और बंधन के लिए आवश्यक पूर्व-स्थिति का कारण वन और भूमि और अन्य संसाधनों पर निर्वाह से आदिवासियों का विसंबंध था। 19वीं शताब्दी के अंत तक उनका विसंबंध लगभग पूरा हो गया था। देश के कई हिस्सों में, आदिवासी स्थानीय उत्पीड़कों और प्रशासकों के खिलाफ विद्रोह करने के लिए गैर-आदिवासियों में शामिल हो गए। उन्होंने भूमि, वन अधिकार कम करने, भोजन की कीमत कम करने आदि की मांग की। आदिवासियों

को अलग-थलग करने से रोकने के लिए बने विधानों के बावजूद, वे अपनी जमीन और अपनी आजीविका के स्रोतों को खोते रहे।

3.4.1.2 स्वतंत्र भारत में भूमि और आजीविका का नुकसान

स्वतंत्रता के बाद के दशक भारत में गहन विकास योजना के दशक थे। यह औद्योगीकरण और शहरीकरण के आसपास केंद्रित राष्ट्र निर्माण के एजेंडे के माध्यम से मुख्यधारा के विकास से आदिवासी समुदायों के हाशिए पर जाने का समय भी था। इस प्रक्रिया के साथ बड़े बांधों, बड़े औद्योगिक परिसरों, बुनियादी ढांचे, बाजार के लिए खानों और जंगलों के विघटन और प्राकृतिक संसाधनों के शोषण पर आदिवासी बसे हुए क्षेत्रों में बढ़ती हुई शहरी और औद्योगिक मांगों को पूरा करने के लिए जहां अधिकांश समृद्ध प्राकृतिक संसाधन, ऐसी जगह में निर्माण कार्य किया गया था। भारत में आदिवासियों पर इस प्रक्रिया का प्रतिकूल प्रभाव को उष्णकटिबंधीय जंगलों के स्वदेशी लोगों के अंतर्राष्ट्रीय गठबंधन द्वारा रिपोर्ट किया गया।

यह बताया गया कि उद्योगों, खानों, नगरनिर्माण, बांधों, वन स्थानों के हानि के प्रतिकूल प्रभाव का दोष आदिवासी लोगों पर थोपा गया।

आदिवासी समुदायों ने राष्ट्र की आर्थिक वृद्धि का भार वहन किया। भूमि अधिग्रहण, औपनिवेशिक कानून का एक भाग था, जो क्राउन यानि शासन के लिए भूमि का अधिग्रहण का काम करता था। यह औपनिवेशिक राज्य के हाथों में एक साधन के रूप में शक्ति थी कि वे अपने लाभों को उन्नत और अग्रिम वर्गों (मुंशी 2013) के पास ले जाएं। 10 मिलियन से अधिक लोग विस्थापित हुए और जो उनके पास था वे सभी खो गया और लाखों आदिवासी समुदायिक एवं सांस्कृतिक हत्या के कगार पर पहुंचाए गए । लगभग पूरे मध्य भारत में एक असंतोष था जो खुद को आदिवासी क्षेत्र में धकेलता पाया गया, विशेष रूप से भूमि और जंगल के मुद्दों और इन से अलग होने पर। कुछ मामलों में रुक-रुक कर लोगों और राज्य के बीच हिंसक टकराव हुआ। आदिवासी लोग भूमि और राष्ट्रीय संसाधनों पर अपने पारंपरिक अधिकारों की अवहेलना के साथ लगभग सभी मायने में अपने संसाधनों पर लगातार नियंत्रण खोते जा रहे हैं। वस्तुतः विभिन्न विकास परियोजनाओं (मुंशी 2013) के पक्ष में मजबूरन विस्थापन हुआ है।

सार्वजनिक और निजी क्षेत्रों के उपक्रमों, विकास परियोजनाओं और उद्योगों ने आदिवासियों के निर्वासन की प्रक्रिया में योगदान दिया है। जिस राज्य को उनके हितों की रक्षा करनी चाहिए, उसने उनके शोषण में बहुत योगदान दिया है। वन की कमी और विनाश ने आदिवासी समुदायों के पहले से ही नाजुक अस्तित्व के आधार को नष्ट कर दिया है। सबसे अधिक प्रभावित आदिवासी महिलाएं हैं, जिन्हें अब परिवार और उनके परिवार के ईंधन, पानी, भोजन और चारे की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए कड़ी मेहनत करनी चाहिए। बड़ी संख्या में आदिवासियों को मौसमी या स्थायी रूप से अन्य ग्रामीण क्षेत्रों, शहरी मैदानों या शहरों में प्रवास करने के लिए मजबूर किया जाता है, क्योंकि उनकी आजीविका के पारंपरिक स्रोतों से वंचित होने के कारण काम के अवसरों की तलाश है। वे थोड़ी सुरक्षा और संरक्षण के साथ 'असंगठित क्षेत्र के विस्तार का एक हिस्सा' चलायमान परन्तु अस्थायी श्रमिकों की एक बड़ी सेना का गठन करते हैं।

यह उल्लेखनीय है कि उत्तर-पूर्व के आदिवासी क्षेत्र की स्थिति मध्य और दक्षिणी भारत से भिन्न है। त्रिपुरा, असम और मणिपुर को छोड़कर, इस क्षेत्र ने औपनिवेशिक दिनों में भी अधिक प्रवास का अनुभव नहीं किया। हालांकि हाल के दिनों में, भूमि और अन्य संसाधनों

का विसंबंध हुआ है। लेकिन यह देश के बाकी हिस्सों की तरह व्यापक नहीं है, विशेष रूप से केंद्रीय जनजातीय क्षेत्र में। इस क्षेत्र के आदिवासी, पैथी के अनुसार, अपने अस्तित्व के लिए संसाधनों को नियंत्रित करते हैं। अरुणाचल प्रदेश, नागालैंड, मिजोरम और मेघालय में आदिवासी बहुसंख्यक हैं। वे यहां भी संघर्ष करते हैं, लेकिन राज्य द्वारा भूमि के अलगाव और संसाधनों के बहिष्कार के साथ उनका बहुत कम संबंध है। वे अपनी राजनीतिक भागीदारी पर अधिक ध्यान केंद्रित करते हैं। (मुंशी, 2013)।

भूमंडलीकरण और उदारीकरण की नीति ने न केवल आदिवासियों को उनके प्राकृतिक संसाधनों से अलग करने की प्रक्रिया को तेज किया है बल्कि उनके लिए अधिक असुरक्षा पैदा की है। राष्ट्रीय, क्षेत्रीय और स्थानीय सीमाओं पर मानव संसाधनों, वस्तुओं, वित्त और प्रौद्योगिकी के मुक्त आवागमन ने इन समुदायों पर प्रतिकूल प्रभाव डाला है। यह देखा गया है कि आदिवासी भूमि का बड़े पैमाने पर स्थानांतरण हो रहा है। यह उन्हें अपनी भूमि से अलग करता है। वन प्रबंधन परियोजनाओं की पांचवीं अनुसूची और संरचना में संशोधन करने के लिए अब प्रयास हो रहे हैं और आंध्र प्रदेश में भारतीय तंबाकू कंपनी जैसी बड़ी निजी कंपनियों के हितों को शामिल करने के लिए संसाधन तैयार किये जा रहे हैं। जिंदलों ने अपने इस्पात संयंत्र के लिए छत्तीसगढ़ में बेनामी लेनदेन के माध्यम से आदिवासी जमीन खरीदी है। सहारा हाउसिंग लिमिटेड ने एक पर्यटन परियोजना (मुंशी, 2013) के लिए महाराष्ट्र के 3,760 एकड़ आदिवासी और वन क्षेत्रों को हड़प लिया।

सरकार ने बड़ी बहुराष्ट्रीय खनन कंपनियों और उनके भारतीय भागीदारों के लिए रास्ता साफ करने के लिए आदिवासी लोगों को बड़े पैमाने पर निष्कासित किया है, जो भारत में लौह अयस्क, कोयला, बॉक्साइट यूरेनियम और अन्य जैव-विविधता का दोहन करने के लिए आ रहे हैं। ओडिशा सरकार ने पहले ही 35 कंपनियों को लोहा और इस्पात उत्पादन के लिए खनन अधिकार दे दिए हैं, जिनमें पोस्को को अनुदान और बड़ी संख्या में एल्यूमीनियम कंपनियां शामिल हैं। खनन और उत्खनन ने हाल ही में बहुत ध्यान आकर्षित किया है। यह एक प्रमुख लाभ के रूप में उभरा है – उद्योग को अक्सर अपनी गतिविधियों को अंजाम देने के लिए बल और धोखाधड़ी, कानूनी और अवैध साधनों का संयोजन करना पड़ता है। हालांकि, खनन क्षेत्र एक तरफ स्थानीय लोगों के बीच हिंसक राजनीतिक झड़पों का स्थान है, और दूसरी ओर निजी पूंजी और राज्य के पारिस्थितिक विनाश, आदिवासियों की पारंपरिक आजीविका का नुकसान और उनके विस्थापन का स्थान है। छत्तीसगढ़ एक ऐसा क्षेत्र है, जिसमें स्थानीय लोगों और पुलिस के बीच झड़प देखी गई है। वास्तव में, इस जगह ने क्षेत्र में माओवादी प्रभाव को कुचलने के लिए बड़े पैमाने पर राज्य दमन देखा है। यह बताया गया है कि स्वतंत्रता के बाद पहले साढ़े चार दशकों में, खनन ने लगभग ढाई करोड़ लोगों को विस्थापित किया था, और उनमें से 25 प्रतिशत से भी कम का पुनर्वास हुआ था। इसमें 50 प्रतिशत से अधिक आदिवासी समुदायों के थे। यह अनुमान लगाया गया था कि देश में खनन के लिए 1,64 लाख हेक्टेयर वन भूमि पहले ही हटा दी गई है (मुंशी, 2013)।

माओवादियों के नेतृत्व में आदिवासियों के विरोध प्रदर्शनों ने केंद्र के साथ-साथ राज्य के साथ-साथ निजी हितों द्वारा अनुसूचित क्षेत्रों से भूमि के अवैध अधिग्रहण को जारी रखने की समस्याओं को केंद्र में लाया है और परिणामस्वरूप जनजातीय समुदायों को उनके संसाधन आधार से अलग कर दिया है। अधिकांश राजनीतिक रूप से अस्थिर क्षेत्र वे हैं जो अन्य प्राकृतिक संसाधनों में वन और समृद्ध हैं, और जो आदिवासी समुदायों के लिए घर हैं (मुंशी, 2013)।

बॉक्स 3.2: औद्योगिकीकरण का प्रभाव

संथाल बहुल क्षेत्रों में उद्योगों की स्थापित होना, परिवर्तन और आधुनिकीकरण का एक और बहुत महत्वपूर्ण कारक था। इन उद्योगों ने शिक्षित और निरक्षर दोनों को रोजगार दिया और गतिशीलता का एक नया स्रोत पेश किया।

इसके अलावा, ये उद्योग एक या दूसरे धार्मिक वर्चस्व से मुक्त थे। उन्होंने जाति-मुक्त और वर्ग-मुक्त व्यवसाय को बढ़ावा दिया। बड़ी संख्या में संथालों ने उनमें रोजगार पाया। ये उद्योग, स्थानीय आदिवासियों की भर्ती कर रहे हैं। लोगों को अपने पारंपरिक संबंधों को और मजबूत करने का अवसर प्रदान किया। वास्तव में, ये उद्योग 'परिजनों की दुनिया' थी। आदिवासी-श्रमिकों द्वारा संथाल पहचान को और मजबूत किया गया।13:11)।

संविधान का पांचवां अनुच्छेद अनुसूचित जनजाति आदिवासियों को उनकी पारंपरिक भूमि और जंगलों पर पूरा अधिकार देता है और निजी कंपनियों को उनकी जमीन पर खनन करने से रोकता है। राज्य के कल्याणकारी उपायों से केवल कुछ ही आदिवासी लाभान्वित हुए हैं। युवा आदिवासी पुरुषों और महिलाओं का एक छोटा हिस्सा अपनी पारंपरिक जीवन शैली को जारी नहीं रखना चाहते हैं, लेकिन अधिकांश आदिवासियों को लगता है कि वे अपनी इच्छाओं के खिलाफ अपनी आजीविका के पारंपरिक स्रोतों से वंचित हैं। उन्हें रोजगार लेने के लिए मजबूर किया जाता है जो उन्हें जीवन की थोड़ी सुरक्षा और गुणवत्ता प्रदान करते हैं।

इस प्रकार, पिछले कुछ दशकों में लाखों आदिवासी विस्थापित हुए हैं, जो विकास परियोजनाओं, औद्योगिक गतिविधियों, वन संरक्षण और विकास की प्रक्रियाओं को अनदेखा करने के लिए रास्ता बना रहे हैं। हालाँकि, ये घटनाक्रम आदिवासियों की कीमत पर हैं। राज्यों की अदूरदर्शी नीतियों ने प्राकृतिक संसाधनों और विस्थापन को नष्ट कर दिया है। आदिवासी समुदायों के अनुभवों को सर्वश्रेष्ठ रूप से 'तंत्रों की हानि' के रूप में वर्णित किया जा सकता है। विस्थापन के बाद, आदिवासियों का पुनर्वास एक दर्दनाक अनुभव है। पुनर्वास स्थलों में स्थितियाँ अक्सर इतनी लचर होती हैं कि बहुसंख्यक आदिवासी अपने गाँव, परिजन समूह, वन क्षेत्रों में लौट जाना चाहते हैं जहाँ वे संतुष्ट महसूस कर सकते हैं। वे बागान और उद्योगों में आकस्मिक श्रम के रूप में और घरेलू नौकरों, रिक्शा-चालक और अपरिचित स्थानों (मुंशी, 2013) में निर्माण श्रमिकों के रूप में काम करने के लिए वे अपने पुनर्वास से बाहर रहना भी पसंद कर सकते हैं।

3.4.2 अधिनियम और प्रतिरोध

देश के सामने पर्यावरणीय समस्याओं के बारे विशेष रूप से हमारे वन संसाधनों के ह्वास में देर से जागरूकता बढ़ी है, संसाधनों और संसाधनों की कमी और अभाव के कारण आदिवासी समूहों के बीच संघर्ष और तनाव बढ़ रहा है। (गुहा, आर. 2013)।

आदिवासी अधिकारों को पूर्ण करने के कार्य और प्राकृतिक संसाधनों पर उनके नियंत्रण खोने से होने वाले नुकसान ने आदिवासी वन समुदायों से एक तीव्र प्रतिक्रिया पैदा की है। वन प्रशासन के शुरुआत से ही जंगलों के सवाल पर, जंगलों के आसपास केंद्रित विभिन्न आदिवासी क्षेत्रों में विद्रोह हुए हैं। उदाहरण के लिए, गढ़वाल में, 1913 में वनों का आरक्षण, 1916 और 1921 में व्यापक सामाजिक आंदोलनों के बाद, पहला गैर-सहयोग आंदोलन था, जिसमें गढ़वाल और कुमाऊं के बड़े क्षेत्र शामिल थे। इन उतार-चढ़ावों ने सरकार को बड़े वन क्षेत्रों को आरक्षित करने के लिए मजबूर किया।

वन प्रतिबंधों के कारण आदिवासी लोगों के बीच जो असंतोष उभरा उसने ग्रामीणों की अनिच्छा होने पर भी वन संरक्षण (गुहा, आर. 2013) के कार्य में वन विभाग के साथ सहयोग करने में व्यक्त हुआ।

कई क्षेत्रों में राज्य ने ग्रामीणों द्वारा उपयोग के लिए बस्ती के तहत गांव के जंगलों के रूप में कुछ जंगलों को बनाया है, लेकिन जंगलों के सामुदायिक स्वामित्व के नुकसान ने प्रभावी रूप से आदमी और जंगल के बीच की कड़ी को तोड़ दिया है। जंगल से आदमी के इस अलगाव की तुलना उत्पादन के साधन से अलग किए जा रहे प्राथमिक उत्पादक के अलगाव से की जा सकती है। नतीजतन, टिहरी गढ़वाल में शताब्दी के शुरुआती वर्षों से छिटपुट वन आंदोलन हुए। संघर्ष और संघर्ष के इस इतिहास को अनिवार्य रूप से अलगाव, संपत्ति के अधिकार और दायित्व द्वारा निकलते हुए देखा जा सकता है (गुहा, आर. 2013)।

3.4.3 भूमि के मुद्दे पर नए तरह का संघर्ष

जमीन के मुद्दे पर संघर्ष का एक नया रूप कुछ आदिवासी समुदायों के भीतर शुरू हुआ है जहाँ आदिवासी महिलाएँ जमीन पर मालिकाना हक पाने के लिए संघर्ष कर रही हैं। आदिवासियों/आदिवासी महिलाओं को भूमि अधिकारों से वंचित करना बहुत चिंता का विषय रहा है। किश्वर द्वारा हो आदिवासी समुदाय पर अध्ययन (1987: 200) का तर्क है कि हो पुरुषों का भूमि और अन्य आय सृजन गतिविधियों पर नियंत्रण बढ़ गया है, जिसके परिणामस्वरूप महिलाओं के परिवार की आजीविका में अधिक से अधिक योगदान के बावजूद ''हो'' महिलाओं का अधिक शोषण हुआ है। बिहार के संथाल जैसे आदिवासी महिलाओं के उदाहरण हैं, जिन्हें आदिवासी समुदाय के पुरुषों द्वारा जमीन के अधिकार के लिए लड़ने के लिए एक अभियान शुरू करने के लिए समर्थन दिया जाता है (मुंशी, 2013)।

3.4.4 जनजातीय अशांति

वनों के शोषण में वृद्धि के साथ, वन जनजातीय समुदायों ने अपने निवास स्थान पर अपने नियंत्रण खोने के नुकसान का अनुभव किया है। यह अभाव आंदोलनों की एक श्रृंखला में प्रकट हुआ है जो पचास और साठ के दशक में रुक-रुक कर बार-बार हुये। वर्तमान में हम अधिकांश क्षेत्रों में अशांति पाते हैं। उत्तर में उत्तराखंड से लेकर पूर्व में झारखंड और पश्चिम में ठाणे धूलिया तक इन आंदोलनों का अध्ययन किया गया है। तेजी से उग्रवादी संघर्ष भूमि और जंगल पर सामुदायिक नियंत्रण हासिल करने के सवाल पर केंद्रित है। राज्य की प्रतिक्रिया में वृद्धि हुई है, इन आंदोलनों को दबाने के लिए सशस्त्र बल का उपयोग किया गया है जैसा कि 1980 की गुआ फायरिंग के मामले में था। राज्य ने सशस्त्र बलों, वन विभाग और पुलिस नौकरशाही को अधिक अधिकार दिए हैं। (गुहा, आर.2013)।

3.5 सारांश

इस इकाई में आपको भारत में आदिवासियों की स्थितियों का पता चला। जनजातियों के अर्थ और विशेषता का वर्णन किया गया था। उनके पास प्राकृतिक संसाधनों के साथ अपने मिथक, लिंग, समस्याएं और पहचान की भावना है। हमने बताया कि कैसे विकास कार्यक्रमों ने आदिवासी समुदायों पर प्रतिकूल प्रभाव डाला है, जिसमें उनके कृषि के पारंपरिक तरीके स्वरूप और उनकी आजीविका के प्राकृतिक स्रोत भी शामिल हैं। आरक्षित वन के बड़े पथों के बाड़ के द्वारा सीमांकन ने आदिवासी वनवासियों को उनके आवास और उनके अस्तित्व के संसाधनों पर नियंत्रण के प्रभावी नुकसान पहुंचाया है। आदिवासी समुदायों और उनके

प्राकृतिक संसाधनों के आधार, उनके कौशल, प्रथाओं, परंपराओं, ज्ञान, योग्यता और इच्छाओं का विकास अवरुद्ध हुआ है।

बोध प्रश्न 3

नोट :1) अपने उत्तरों के लिए नीचे दिए गए स्थान का प्रयोग कीजिए।

2) इकाई के अंत में दिए गए उत्तरों से अपने उत्तर मिलाइए।

1) भारत में आदिवासी लोगों की प्रमुख आजीविका जागरूकता के बारे में संक्षेप में बताएं। दस पंक्तियों का उपयोग करें

.....

.....

.....

.....

.....

2) भूमंडलीकरण की प्रक्रिया जंगलों में रहने वाली जनजातियों को कैसे प्रभावित करती है?

.....

.....

.....

.....

.....

3.6 संदर्भ

बेली, एफ.जी. 1961. भारतीय में 'जनजाति और भारत में जाति', नागरिक शास्त्र , वॉल्यूम -5। पृ.7-19.

घुर्ये, जी.एस. (1963). अनुसूचित जनजाति, लोकप्रिय प्रकाशन, प्रा. लिमिटेड, बॉम्बे।

हेमेन्दोर्फ , सी.वी.फ. C.V.F. (1977). भारत में जनजातीय समस्याएं भारत में जाति और धर्म में संपादन द्वारा रोमेश थापर मैकमिलन, दिल्ली।

कायरप साराप 2017। मध्य भारत के जनजातीय बेल्ट में संसाधन, गरीबी और सार्वजनिक कार्रवाई तक पहुंच का क्षरण। समाजशास्त्रीय बुलेटिन 66 (1) 22 पृ. 41। भारतीय समाजशास्त्रीय समाज, साधु प्रकाशन।

मुंशी, इंद्र। 2013. आदिवासी प्रश्नः भूमि, वन और आजीविका के मुद्दे, ओरिएंट ब्लैक स्वान, नई दिल्ली।

पुरकायस्थ, नबरुन, 2016. भारतीय जनजाति की अवधारणाः एक सिंहावलोकन, इंटरनेशनल जर्नल ऑफ एडवांस्ड रिसर्च इन मैनेजमेंट एंड सोशल साइंसेज वॉल्यूम 5,. नंबर 2, फरवरी 2016

गुहा, रामचंद्र 2013: ब्रिटिश और वानस्पतिक भारत में वानिकी: एक ऐतिहासिक विश्लेषण।

टीबा, आर, (संपादन) 2010. पूर्वोत्तर भारत और विकास की अनुसूचित जनजाति, बी. आर, प्रकाशन निगम, दिल्ली।

ठाकुर, शीतल 2012, भारतीय जनजातियों के सामाजिक समावेशन और बहिष्करण का मुद्दा, कला, प्रबंधन और मानविकी पर अंतर्राष्ट्रीय जर्नल 1 (1): 14-19 (2012)

खाका, वर्जीनियस 1999. भारत में जनजातियों का परिवर्तन: प्रवचन की शर्तें। आर्थिक और राजनीतिक साप्ताहिक। वॉल्यूम। 34, नंबर 24 (जून 12-18, 1999), पृ. 1519-1524.

3.7 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

1) यह शब्द लैटिन शब्द 'ट्राइबर्स' से लिया गया है, जो एक निवास स्थान को संदर्भित करता है। यह उन लोगों के एक समूह को गाता है जो एक समुदाय से संबंधित है जो एक आम 33 से एक सामान्य वंश का दावा करते हैं। वे सभी एक ही भाषा, सांस्कृतिक विशिष्टता और सापेक्ष बाहरीपन को साझा करते हैं।

2) एकता की भावना और एक सामान्य बोली जनजातियों की दो प्रमुख विशेषताएं हैं।

बोध प्रश्न 2

1) आदिवासी लोगों को विशेष रूप से मध्य भारत से संबंधित भूमि के अलगाव और विकास की बहुत प्रक्रिया में आजीविका के अपने पारंपरिक स्वरुप के विघटन का सामना करना पड़ा क्योंकि औद्योगिक और खनन जैसी बड़ी परियोजनाओं ने भूमि ने उनके प्रवेश को रोक दिया।

3) मध्य भारत में कोई भी आदिवासी औपनिवेशिक काल के साथ-साथ समकालीन समय के दौरान वन भूमि तक पहुंचने के अपने पारंपरिक अधिकारों को नहीं खोता था।

बोध प्रश्न 3

1) कुछ आदिवासी शिकार और भोजन एकत्र करने पर रह रहे थे, लेकिन बहुसंख्यक लोग कृषक और खेतिहर मजदूर थे। कई लोग घरेलू उद्योग, खनन कार्य, वृक्षारोपण आदि में लगे हुए थे।

2) स्वतंत्र भारत में वैश्वीकरण और उदारीकरण की प्रक्रियाओं ने उन आदिवासियों पर प्रतिकूल प्रभाव डाला जिनके वन ऋणों पर प्रथागत अधिकार उन्हें वंचित और उनके पर्यावरण से वंचित और विस्थापित कर दिया गया था। वे या तो मजदूरों/नाबालिगों /अधिवासियों आदि के रूप में काम कर रहे थे या शहरों और अन्य क्षेत्रों में प्रवास के लिए मजबूर थे जो आजीविका के स्रोत की तलाश कर रहे थे।

इकाई 4 जाति*

इकाई की रूपरेखा

4.0 उद्देश्य

4.1 प्रस्तावना

4.2 जाति व्यवस्था की विशेषताएँ

4.3 जाति को समझने के सैद्धांतिक दृष्टिकोण

4.3.1 जाति और वर्ग

4.3.2 जजमानी प्रणाली

4.4 जाति व्यवस्था के भीतर परिवर्तन और निरंतरता

4.4.1 जाति और राजनीति

4.4.2 जातिगत भेदभाव को रोकने के उपाय

4.5 सारांश

4.6 संदर्भ

4.7 बोध प्रश्नों के उत्तर

4.8 शब्दावली

4.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढने के बाद, आप सक्षम होंगे :

- जाति को परिभाषित करें और इसकी विशेषताओं का वर्णन करने में;
- जाति की समझ के सैद्धांतिक दृष्टिकोण पर चर्चा करने में;
- जजमानी प्रणाली और जाति व्यवस्था के साथ इसके संबंध का वर्णन करने में;
- जाति व्यवस्था में प्रमुख परिवर्तनों और निरंतरता के तत्वों पर चर्चा करने में;
- भारतीय राजनीतिक प्रणाली और अंत में जाति व्यवस्था के प्रभाव की व्याख्या करने; और
- जातिगत भेदभाव को कम करने के लिए किए गए उपायों पर चर्चा करने में।

4.1 प्रस्तावना

जाति सामाजिक स्तरीकरण की एक प्रणाली है। यह भारतीय सामाजिक संरचना के मूल में है। इसमें जन्म के अनुसार रैंकिंग शामिल है और एक व्यक्ति के व्यवसाय, विवाह और सामाजिक संबंधों को निर्धारित करता है। मानदंडों, मूल्यों और प्रतिबंधों का एक निर्धारित समूह है जो जाति के भीतर सामाजिक व्यवहार को नियंत्रित करता है।

समाजशास्त्रियों ने जाति को, वंशानुगत, अंतोर्गामी समूह के रूप में, जो आमतौर पर स्थानीयकृत है में परिभाषित किया है। जिसका एक पारंपरिक व्यवसाय है और जो जातियों

*डॉ. शैली भाषांजली/अनु. राजेंद्र पांडेय/शास्वत कुमार

के स्थानीय पदानुक्रम में एक पेशा और एक विशेष स्थान रखता है। जातियों के बीच संबंध अन्य बातों के अलावा, शुद्धता एवं अशुद्धता की अवधारणा और जाति के भीतर होने वाली सामान्य अधिकतम समानता के आधार पर संचालित होते हैं "(श्रीनिवास 1962)। यह जाति व्यवस्था के आदर्श रूप की परिभाषा है। वास्तव में, हालांकि, जाति व्यवस्था की संरचना और कार्यप्रणाली में भिन्नताएं हैं।

जाति व्यवस्था के सैद्धांतिक निरूपण और इसकी अस्तित्वगत वास्तविकता के बीच अंतर करना अनिवार्य है। सैद्धांतिक रूप से, भारतीय समाज के जातिगत स्तरीकरण का मूल वर्ण व्यवस्था में है। इस प्रणाली का शाब्दिक अर्थ है रंग जो वैदिक काल के दौरान प्रचलित था। रंग के इस सिद्धांत के अनुसार, हिंदू समाज चार मुख्य वर्णों में विभाजित थाः ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र ।

वर्ण की अवधारणा का आम तौर पर ऋग्वेद वेद के पुरुष सूक्त से पता चलता है। इसमें कहा गया है कि वर्ण व्यवस्था की उत्पत्ति यज्ञ द्वारा आदि जीव या पुरुष से हुई है। यज्ञ के बाद, मुख से ब्राह्मण, बाहों से क्षत्रिय, जांघों से वैश्य और पैरों से शूद्र प्रकट हुए । इस प्रकार, जिन चार वर्णों का उदय हुआ, उन्हें दैवीय उत्पत्ति माना गया।

4.2 जाति व्यवस्था की विशेषताएँ

प्रसिद्ध समाजशास्त्री घुर्ये (1962), ने जाति व्यवस्था की छह विशेषताओं की पहचान की। ये छह विशेषताएं हैं :

क) **समाज का खंडीय विभाजन**

हिंदू समाज विभिन्न जातियों में विभाजित है। जाति की सदस्यता का निर्धारण जन्म से होता है न कि चयन और उपलब्धियों से। इसलिए जाति की स्थिति को जन्म (जन्म के अनुसार) माना जाता है।

ख) **पदानुक्रम**

जाति व्यवस्था में सामाजिक प्राथमिकता की एक विशिष्ट योजना है जिसमें उन्हें एक सामाजिक और अनुष्ठान पदानुक्रम में व्यवस्थित किया जाता है। उच्च और निम्न, श्रेष्ठता और हीनता की भावना इस उन्नयन या रैंकिंग के साथ जुड़ी हुई है। ब्राह्मणों को पदानुक्रम के शीर्ष पर रखा जाता है और उन्हें अनुष्ठानिक रूप से शुद्ध या सर्वोच्च माना जाता है। सबसे अशुद्ध माने जाने वाले अछूत, पदानुक्रम के सबसे निचले पायदान पर होते हैं। बीच में क्षत्रिय हैं, उसके बाद वैश्य हैं। इस प्रकार, जाति पदानुक्रम के समग्र ढांचे में एक विशिष्ट स्थिति पर कब्जा करती है।

ग) **भोजन और सामाजिक संपर्क पर प्रतिबंध**

ऐसे नियम निर्धारित किए गए हैं जो भोजन के आदान-प्रदान को नियंत्रित करते हैं जिसे विभिन्न जातियों के बीच खान-पान और सामाजिक संपर्क भी कहा जाता है। जातियों के बीच एक तरह के भोजन को एक साथ खाने, प्राप्त या आदान-प्रदान करने पर प्रतिबंध है। एक ब्राह्मण किसी भी समुदाय से 'पक्का' भोजन, जैसे घी 'में तैयार किया हुआ भोजन स्वीकार करेगा, लेकिन वह अन्य जाति के हाथों पानी में तैयार किए गए भोजन को स्वीकार नहीं कर सकता। प्रदूषण की अवधारणा सामाजिक संपर्क की सीमा पर गंभीर प्रतिबंध लगाती है।

घ) विभिन्न वर्गों के नागरिक और धार्मिक निर्योग्यताएँ और विशेषाधिकार

प्रत्येक जाति, अनुष्ठान के रूप में अन्य की तुलना में अधिक शुद्ध या अशुद्ध मानी जाती है। शुद्धता और अशुद्धता की विचारधारा विभिन्न जातियों के बीच संबंधों को महत्वपूर्ण रूप से नियंत्रित करती है। श्रेष्ठ जातियों द्वारा अपनी औपचारिक शुद्धता को बनाए रखने के लिए कई वर्जनाएँ प्रचलित हैं।

अनुष्ठान को अशुद्ध माना जाने वाली जातियों को कई गुना विकलांग बना दिया गया। उदाहरण के लिए, उन्हें सार्वजनिक सड़कों, सार्वजनिक कुओं का उपयोग करने या हिंदू मंदिरों में प्रवेश करने से मना किया गया था। कुछ जातियों की छाया को प्रदूषणकारी माना जाता था, जैसे कि तमिलनाडु में शार्न्स या ताड़ी निकालने वाली जाति को पहले के समय में ब्राह्मण से अपनी दूरी को 24 कदम तक सीमित करना पड़ता था। प्रत्येक जाति के अपने रीति-रिवाज, परंपराएं, प्रथाएं और रिवाज हैं। इसके अपने अनौपचारिक नियम, नियम और प्रक्रियाएं हैं।

ङ) विवाह पर प्रतिबंध

अंतर्विवाह (एंडोगैमी) या किसी एक जाति या उपजाति के भीतर विवाह जाति व्यवस्था की एक अनिवार्य विशेषता है। आमतौर पर, लोग अपनी जाति या उप-जाति में विवाह करते हैं। हालाँकि, कुछ अपवाद भी थे। भारत के कुछ क्षेत्रों में, उच्च जाति के पुरुष निम्न जाति की महिलाओं से शादी कर सकते थे। इस तरह के विवाह गठबंधन को बहिर्विवाह (हाइपरगामी) के रूप में जाना जाता है।

च) व्यवसाय की अप्रतिबंधित पसंद का अभाव

परंपरागत रूप से प्रत्येक जाति एक व्यवसाय से जुड़ी थी। अनुष्ठान की शुद्धता और उनके संबंधित व्यवसाय की शुद्धता एवं अशुद्धता के आधार पर उन्हें उच्च और निम्न स्थान दिया गया था। ऊपर के पद पर बैठे ब्राह्मणों को पवित्र ज्ञान प्राप्त करने और सिखाने का कर्तव्य निर्धारित किया गया था।

उपरोक्त, जाति व्यवस्था की आवश्यक विशेषताओं का विवरण बताता है। हालाँकि भारत के विभिन्न क्षेत्रों में इसकी संरचना में जातिगत संरचना के कई रूप हैं। एक क्षेत्रीय वास्तविकता के रूप में, कोई व्यक्ति जाति-रैंकिंग, रीति-रिवाजों और व्यवहारों, विवाह नियमों और जाति प्रभुत्व के विभिन्न पैटर्न देख सकता है।

प्रत्येक जाति की अपनी जाति परिषद या पंचायत होती थी जहाँ उसकी जाति के सदस्यों की शिकायतों को सुना जाता था। जाति पंचायत निर्धारित मानदंडों के अनुसार जाति के लोगों के व्यवहार को नियंत्रित कर रही थी और सामाजिक व्यवहार को मंजूरी दे रही थी। यदि कोई व्यक्ति जाति प्रतिबंधों का पालन नहीं करता था तो उस जाति के बुजुर्गों के नेतृत्व में, इन परिषदों के पास एक सदस्य को पूर्व-संवाद करने की शक्ति थी । इस प्रकार जाति पंचायतें, ग्राम पंचायतों से अलग रही हैं, यद्यपि अब वैधानिक निकायों के रूप में ग्राम पंचायतें, जाति की परवाह किए बिना सभी ग्रामीणों की सेवा करती हैं, हालांकि वे एक ही सिद्धांत पर काम करती हैं।

बॉक्स 4.1

ड्यूमॉन्ट उन लोगों के लिए महत्वपूर्ण हैं जिन्होंने जाति को राजनीतिक-आर्थिक कारकों के संदर्भ में समझाने की कोशिश की, जहां जाति को वर्चस्व और शोषण की प्रणाली के रूप में देखा गया था। उदाहरण के लिए, वह एफ.जी. की आलोचना करता

है। बेली, जिन्होंने 'दि कास्ट एंड द इकोनॉमिक फ्रंटियर' (उड़ीसा में उनके क्षेत्रीय कार्य पर आधारित) में अपनी पुस्तक में तर्क दिया है कि राजनीतिक-आर्थिक रैंक और जातीय संस्कार के श्रेणीक्रम के बीच उच्च स्तर का संयोग था। यह जाति के सामान्य नियम का प्रतिबिंब है कि जो लोग धन और राजनीतिक शक्ति प्राप्त करते हैं, वे श्रेणीक्रम की संस्कार पद्धति में वृद्धि करते हैं। कहने का मतलब यह है कि गाँव के उत्पादक संसाधनों पर अंतर नियंत्रण द्वारा जाति समूहों की रैंकिंग प्रणाली को मान्य किया गया था।

4.3 जाति को समझने के सैद्धांतिक दृष्टिकोण

आइए हम विद्वानों द्वारा जाति प्रणाली की समझ के लिए गुणात्मक और अंतःक्रियात्मक दृष्टिकोण की जांच करें। जाति के लिए जिम्मेदार गुणात्मक दृष्टिकोण जाति की विभिन्न अपरिवर्तनीय विशेषताओं के संदर्भ में जाति का विश्लेषण करता है। इस दृष्टिकोण का उपयोग करके जी एस घुरे, जे एच हटन जैसे समाजशास्त्री अपनी महत्वपूर्ण विशेषताओं के माध्यम से जाति व्यवस्था को परिभाषित करते हैं। उपरोक्त खंड में घूरे द्वारा वर्णित जाति प्रणाली की छह विशेषताएं शामिल हैं।

अपनी पुस्तक 'कास्ट इन इंडिया', हटन ने माना कि जाति व्यवस्था की केंद्रीय विशेषता है। इस तथ्य के आसपास विभिन्न प्रतिबंध और वर्जनाएँ निर्मित हैं। विभिन्न जातियों के बीच बातचीत विभिन्न जातियों पर लगाए गए इन प्रतिबंधों का उल्लंघन नहीं करती है। हटन द्वारा देखी गई जाति व्यवस्था की एक अन्य महत्वपूर्ण विशेषता उनकी अपनी जातियों के अलावा अन्य लोगों से पका हुआ भोजन लेना है। एम एन श्रीनिवास इन विशेषताओं के आधार पर जातियों के बीच उत्पन्न संबंधों की संरचना का अध्ययन करना चाहते हैं। इस प्रकार, वह जातिगत पहचान के एक गतिशील पहलू का परिचय देता है।

अपनी पुस्तक 'कास्ट इन इंडिया', हटन ने माना कि अंतर्विवाह (एण्डोगामी) जाति व्यवस्था की केंद्रीय विशेषता है। इस तथ्य के आसपास विभिन्न प्रतिबंध और वर्जनाएँ निर्मित हैं। विभिन्न जातियों के बीच बातचीत विभिन्न जातियों पर लगाए गए इन प्रतिबंधों का उल्लंघन नहीं करती है। हटन द्वारा देखी गई जाति व्यवस्था की एक अन्य महत्वपूर्ण विशेषता उनकी अपनी जातियों के अलावा अन्य लोगों से पका हुआ भोजन लेना है। एम एन श्रीनिवास इन विशेषताओं के आधार पर जातियों के बीच उत्पन्न संबंधों की संरचना का अध्ययन करना चाहते हैं। इस प्रकार, वह जातिगत पहचान के एक गतिशील पहलू का परिचय देता है।

अंतःक्रियात्मक दृष्टिकोण इस बात को ध्यान में रखता है कि एक स्थानीय अनुभवजन्य संदर्भ में जातियों को वास्तव में एक दूसरे के संबंध में कैसे श्रेणीगत किया जाता है। बेली के अनुसार जाति की गतिशीलता और पहचान अलगाव और पदानुक्रम के दो सिद्धांतों द्वारा संयुक्त हैं। उसे लगता है कि 'जातियाँ संस्कारों के नियमों में व्यक्त और धर्मनिरपेक्ष पदानुक्रम में खड़ी हैं'। धर्मनिरपेक्ष पदानुक्रम से उनका तात्पर्य था आर्थिक और राजनीतिक पदानुक्रम और संस्कार धार्मिक व्यवस्था का हिस्सा हैं। संस्कारों की प्रणाली राजनीतिक और आर्थिक प्रणाली को अधिव्याप्त (overlap) करती है। इस संदर्भ में बेली (1957) ने उड़ीसा के गाँव बिसिपारा द्वारा अपना दृष्टिकोण समझाया है। उन्होंने दिखाया है कि कैसे बिसिपारा में जाति की स्थिति बदली है और आजादी के बाद और अधिक तरल हो गई है जब क्षत्रियों ने अपनी जमीन खो दी है। इससे उनकी अनुष्ठान श्रेणी में भी गिरावट आई। इसे दूसरी जातियों से भोजन की स्वीकृति और गैर-स्वीकृति, जैसे कि बातचीत के तरीके में स्पष्ट रूप से परिवर्तन किया गया।

अनुष्ठानिक अंतःक्रिया द्वारा मैरिएट ने जाति रैंकिंग की व्यवस्था का अध्ययन किया। उन्होंने पुष्टि की कि अनुष्ठान पदानुक्रम स्वयं आर्थिक और राजनीतिक पदानुक्रम से जुड़ा हुआ है। आमतौर पर आर्थिक और राजनीतिक श्रेणियों का मेल होता है। यह कहना है कि अनुष्ठान और गैर-अनुष्ठान दोनों पदानुक्रम जाति क्रम में श्रेणियों को प्रभावित करते हैं, हालांकि अनुष्ठान पदानुक्रम एक बड़ी भूमिका निभाते हैं।

ड्यूमॉन्ट ने जाति के अध्ययन के अंतःक्रियात्मक परिप्रेक्ष्य में एक नया आयाम जोड़ा। उनके अनुसार स्थानीय संदर्भ का जाति श्रेणी और पहचान में एक भूमिका है, लेकिन यह पदानुक्रम की विचारधारा की प्रतिक्रिया है जो संपूर्ण जाति व्यवस्था पर फैली हुई है। ड्यूमॉन्ट के अनुसार जाति एक विशेष प्रकार की असमानता है और पदानुक्रम जाति व्यवस्था के आधार पर आवश्यक मूल्य है। यह वह मूल्य है जो हिंदू समाज को एकीकृत करता है। जाति के विभिन्न पहलुओं का कहना है कि ड्यूमॉन्ट का सिद्धांत शुद्ध और अशुद्ध के बीच विरोध के सिद्धांत पर आधारित हैं। 'शुद्ध', 'अशुद्ध' से बेहतर है और उसे अलग रखा जाता है।

बॉक्स 4.2

एक अनुकूल संस्था के रूप में जाति पर इस भागीदारी का प्रभाव स्पष्ट रूप से दो गुना हैः जाति के आंतरिक सामाजिक संगठन पर एक रूढ़िवादी के रूप में जो अपनी अखंडता को अधिक प्रभावी ढंग से जुटाने के लिए संरक्षित करेगा, और अन्य जातियों के लिए अपने बाहरी संबंधों में एक अधिक रचनात्मक रूप में वे शक्ति, प्रतिष्ठा और धन के लिए दुर्लभ संसाधनों के अपने हिस्से को अधिकतम करने का प्रयास करते हैं, और 'मूल समझौते की नागरिक राजनीति' को विकसित करते हैं। बाजार अर्थव्यवस्था और लोकतांत्रिक राजनीति के बारे में बहुत अधिक निर्भरता लाने के लिए जाति समूहों को दूसरों के उद्देश्यों के विपरीत शक्ति प्रदान करती है। जिसका पहला प्रभाव जाति की निष्ठाओं का संरक्षण करना और दूसरा व्यापक लोगों का निर्माण करना होता है। इस प्रकार लिंच का निष्कर्ष हैः 'आधुनिकीकरण की प्रक्रिया ही इस प्रक्रिया में खुद को आगे लाती है और एक नए राज्य के संघर्ष में नागरिकता और जातिगत प्रस्थितियों के प्रति निष्ठावान राष्ट्र बनने के लिए संघर्ष करती है'।

भारतीय सामाजिक व्यवस्था के विश्लेषण में जाति की सैद्धांतिक स्थिति अत्यधिक जटिल है। यह सामाजिक स्तरीकरण की एक संरचनात्मक इकाई के साथ-साथ एक प्रणाली दोनों का गठन करता है। दोनों के बीच निहित अंतर विश्लेषण के स्तर पर निर्भर करता है। समाजशास्त्री जो जाति के सांस्कृतिक दृष्टिकोण को देखते हैं, शुरू से ही, इसे स्तरीकरण के एक स्वायत्त सिद्धांत से जोड़ते हैं, जिसके आधार हैंः संस्थागत असमानता, सामाजिक गतिशीलता के संबंध में बंद सामाजिक प्रणाली, श्रम के विभाजन का एक प्राथमिक स्तर पारस्परिकता के अनुष्ठान आधारों पर वैधता, और प्रदर्शन के बजाय गुणवत्ता (अनुष्ठान शुद्धता या नस्लीय शुद्धता) पर जोर देता है।

दूसरे शब्दों में, जाति सांस्कृतिक प्रणाली या विश्व-दृष्टिकोण के एक स्वायत्त रूप से जुड़ी हुई है। जाति के इस दृष्टिकोण का इतिहास समाजशास्त्रीय साहित्य में बहुत पहले से ही पाया जाता है (देखें डुबॉइस 1906, नेसफील्ड 1885ः ओ मल्ले 1932ः वेबर 1952ः क्रोबेबर 1930 आदि) और यह प्रवृत्ति अभी भी जारी है (बर्कमैन 1967 देखें, बर्थ 1960, डेविस 1951) डलतकंस 1968, आदि)। इस सम्बन्ध में जाति की महत्वपूर्ण धारणा केवल स्तरीकरण के सिद्धांत का एक प्रकार है जो न केवल भारत में, बल्कि अन्य समाजों में भी कार्यरूप में पाया जा सकता है। इस दृष्टिकोण का एक महत्वपूर्ण निहितार्थ है, जैसा कि हम डेविस के लेखन में पाते हैं, ए.आर. देसाई (1966) और बोस (1968 अन्य) और अन्य यह समझते हैं कि एक

संरचनात्मक वास्तविकता होने के नाते यानी सामाजिक संरचना जाति का हिस्सा होने के बाद भारत में समाज उच्च स्तर (औद्योगिकीकरण के बाद सिंह 1968) में विकसित होता है। जाति के संरचनात्मक दृष्टिकोण के बारे में एक सरल समझ यह है कि यह एक आदर्श प्रकार की स्तरीकरण प्रणाली बनाता है और जोकि हमेशा के लिए अस्तित्व में हो सकता है, या समाजों में स्तरीकरण के अन्य रूपों के साथ सह-अस्तित्व में है। यह दृष्टिकोण समाजशास्त्रियों द्वारा आयोजित किया जाता है जो सामाजिक स्तरीकरण के विकासवादी-ऐतिहासिक दृष्टिकोण के बजाय एक संरचनात्मक-कार्यात्मक दृष्टिकोण अपनाते हैं। (सिंह, योगेंद्र 1997. पृष्ठ .32)

इस प्रकार जाति को एक सांस्कृतिक घटना के रूप में मानने वाले समाजशास्त्रियों और एक संरचनात्मक घटना के रूप में परिभाषित करने वालों के बीच अंतर किया जा सकता है। इन पदों में से प्रत्येक में जाति के दृष्टिकोण के आधार पर एक और उपविभाजन होता हैः चाहे वह एक विशेष घटना हो, इस मूल रूप से भारतीय हों, या उसके सार्वभौमिक गुण हों। जब हम सैद्धांतिक निर्माण के दो स्तरों के बीच अंतर करते हैं, अर्थात, सांस्कृतिक और संरचनात्मक और सार्वभौमिक और विशिष्ट तब इस प्रकार चार दृष्टिकोण तार्किक वर्गों के रूप में यह उभरते हैं।

4.3.1 जाति और वर्ग

भारतीय समाज में, जाति और वर्ग सामाजिक स्तरीकरण के दो विभिन्न रूपों के रूप में अक्सर एक दूसरे के साथ ओवरलैप करते पाए गए हैं। योगेंद्र सिंह (1997) ने उल्लेख किया है कि भारत में अक्सर वर्ग जाति द्वारा परस्पर-व्याप्त होता है। जबकि जाति को एक वंशानुगत समूह के रूप में माना जाता है, एक सामाजिक वर्ग उन लोगों की श्रेणी है जो अपने समुदाय या समाज के अन्य वर्गों के संबंध में समान सामाजिक-आर्थिक स्थिति साझा करते हैं। आंद्रे बेत्तेई (1965) ने दक्षिण भारत के श्रीपुरम में जाति और वर्ग के अपने अध्ययन के आधार पर पाया कि जाति और वर्ग के बीच एक गतिशील संबंध रहा है। पारंपरिक प्रणाली में, जाति और वर्ग के बीच अधिक से अधिक समानता थी। लेकिन वर्ग व्यवस्था धीरे-धीरे जातिगत संरचना से अलग हो रही है । जाति की संरचना में किसी की भी स्थिति अलग-अलग हो सकती है। हालांकि, जाति, वर्ग भी शक्ति संरचना के साथ घनिष्ठ रूप से जुड़े हुए हैं जो संपत्ति के जहाज में स्वामित्व के संदर्भ में परिलक्षित होता है, जैसे कि, भूमि और राजनीतिक और समाज में आर्थिक स्थिति।

सोचिये और करिये।

अपने परिवार दोस्तों के साथ अपनी खुद की चर्चा से उन विशेषताओं की एक सूची बनाते हैं जिन्हें आप जाति से संबंधित मानते हैं। अपने अध्ययन केंद्र में अन्य छात्रों के साथ चर्चा करें।

4.3.2 जजमानी प्रणाली

जजमानी प्रणाली को भारतीय सामाजिक मानव-शास्त्र में विलियम विजर (1937) द्वारा उनके अग्रणी कार्य, 'द हिंदू जजमानी सिस्टम' के माध्यम से पेश किया गया था। उत्तर प्रदेश के एक गांव के अपने अध्ययन में, उन्होंने पता लगाया कि विभिन्न जातियों ने वस्तुओं और सेवाओं के उत्पादन और विनिमय में एक दूसरे के साथ कैसे अंतः क्रिया करती हैं । उन्होंने यह पाया गया कि, कुछ भिन्नताओं के साथ, यह प्रणाली पूरे भारत में मौजूद थी।

वस्तुओं और सेवाओं के उत्पादन और वितरण की कृषि प्रणाली पर आधारित, जजमानी प्रणाली जमींदार उच्च जाति समूहों और व्यावसायिक जातियों के बीच की कड़ी है। यह

कहा जा सकता है कि जजमानी प्रणाली वितरण की एक प्रणाली है जिसके तहत उच्च जाति की भूमि के मालिक परिवारों को विभिन्न निम्न जातियों जैसे कि बढ़ई, नाई, स्वीपर, आदि द्वारा सेवाएं प्रदान की जाती हैं।

यह गांव में विभिन्न जाति समूहों के बीच आर्थिक, सामाजिक और अनुष्ठान संबंधों की एक प्रणाली है। इस प्रणाली के तहत संरक्षक और सेवा जातियां हैं। चूँकि जाति का पेशा से पारंपरिक संबंध है, इसलिए कई सेवाएँ हासिल करने के लिए जातियाँ एक-दूसरे पर निर्भर हैं।

सेवा करने वाली जातियों को कमीन कहा जाता है जबकि सेवा की जातियों को जजमान कहा जाता है। प्रदान की गई सेवाओं के लिए, सेवक जातियों का भुगतान नकद या प्रकार (अनाज, चारा, कपड़े, दूध, मक्खन, आदि जैसे पशु उत्पादों) में किया जाता है। राजपूत, भूमिहार और जाट उत्तर में संरक्षक जातियां और दक्षिण में काममा, रेड्डी और लिंगायत हैं। सेवा जातियों में नाई, बढ़ई, लोहार, धोबी आदमी, चमड़ा-मजदूर आदि शामिल हैं, जजमानी के अधीन संबंध स्थायी और वंशानुगत था। ऑस्कर लेविस का उल्लेख है कि एक गांव के भीतर प्रत्येक जाति समूह पारंपरिक रूप से अन्य जातियों के परिवारों को कुछ मानकीकृत सेवाएं देने के लिए बाध्य है। जबकि उच्च जाति के परिवारों को निम्न जातियों से सेवाएँ प्राप्त होती हैं और बदले में निम्न जातियों के सदस्यों को अनाज प्राप्त होता है।

पिछले दशकों में जजमानी प्रणाली में कई महत्वपूर्ण बदलाव हुए हैं। गाँव में, हर जाति इस प्रणाली में भाग नहीं लेती है। जजमानी संबंध के अलावा, माल और सेवाओं के प्रदाताओं और उनके खरीदारों के बीच हमेशा संविदात्मक, मजदूरी श्रम प्रकार का संबंध रहा है। नकदी अर्थव्यवस्था का परिचय परिवर्तन भी लाया है, क्योंकि जजमानी प्रणाली में भुगतान नकदी के बजाय कृपा पर आधरित थे। कस्बों और शहरों में नए अवसर आए हैं, और कई व्यावसायिक जातियां इन अवसरों में भाग लेने के लिए शहरों में चली गई हैं। जीवन शैली, आधुनिक शिक्षा, बेहतर परिवहन और संचार के प्रभाव के कारण जजमानी प्रणाली में गिरावट आई है। विनिमय की वस्तु विनिमय प्रणाली अब लगभग विलुप्त हो चुकी है। अब भुगतान नकद के रूप में किया जाता है। जाति व्यवस्था में व्यापक परिवर्तन ने भी जजमानी प्रणाली के पारंपरिक संस्थान के कामकाज के रास्ते में बाधा उत्पन्न किया है।

बोध प्रश्न 1

नोट :1) अपने उत्तरों के लिए नीचे दिए गए स्थान का प्रयोग कीजिए।

2) इकाई के अंत में दिए गए उत्तरों से अपने उत्तर मिलाइए।

1) जाति को परिभाषित करें और भारत में जाति व्यवस्था की कम से कम तीन विशेषताओं का उल्लेख करें।

.....

.....

.....

.....

.....

.....

2) जाति की समझ के प्रति गुणात्मक दृष्टिकोण का क्या अर्थ है? जवाब देने के लिए पांच लाइनों का उपयोग करें।

.....

.....

.....

.....

.....

4.4 जाति व्यवस्था के अंतर्गत परिवर्तन एवं निरंतरता

परिभाषा के अनुसार, जाति व्यवस्था को स्तरीकरण की कठोर और बंद प्रणाली के रूप में देखा जाता है। इसका अर्थ यह है कि एक जाति की प्रस्थिति से दूसरी जाति की ओर में कोई आंदोलन या गतिशीलता नहीं है। सामाजिक गतिशीलता वह प्रक्रिया है जिसके द्वारा व्यक्ति या समूह आगे या नीचे की ओर बढ़ते हैं अथवा एक सामाजिक स्थिति से दूसरे सामाजिक पदानुक्रम में परिवर्तित होते हैं। वास्तव में, सामाजिक गतिशीलता जाति व्यवस्था की एक महत्वपूर्ण विशेषता रही है। इसका स्पष्ट अर्थ है कि जाति व्यवस्था एक गतिशील वास्तविकता है, जिसमें इसकी संरचना और कार्य के संदर्भ में लचीलापन है।

संस्कृतिकरण की अवधारणा जो मूल रूप से सामाजिक गतिशीलता की एक प्रक्रिया है, जिसे एम एन श्रीनिवास ने जाति व्यवस्था की गतिशील प्रकृति का वर्णन करने के लिए विकसित किया था। अपने पथप्रवर्तक अध्ययन, कूर्ग (1952) के बीच धर्म और समाज, में एम एन श्रीनिवास ने स्थानीय निचली जातियों द्वारा ब्राह्मणों के सांस्कृतिक अनुकरण के संदर्भ में जातिगत गतिशीलता को समझाया। उन्होंने संस्कृतिकरण को 'एक ऐसी प्रक्रिया' के रूप में परिभाषित किया, जिसके द्वारा 'निम्न' हिंदू जाति, या आदिवासी या अन्य समूह अपने रीति-रिवाजों, कर्मकांड, विचारधारा और जीवन के तरीके को उच्च, अक्सर 'द्विज' जाति के रूप में बदलते हैं। आम तौर पर इस तरह के बदलावों को जाति पदानुक्रम में एक उच्च पद के लिए एक दावे के बाद किया जाता है, जो परंपरागत रूप से स्थानीय समुदाय द्वारा दावेदार जाति को स्वीकार किया जाता है।

पूर्वी उत्तर प्रदेश के सेनापुर गाँव में नोनिया के विलियम रोव्स के अध्ययन से आर्थिक समृद्धि प्राप्त करने के बाद संस्कृतकरण के माध्यम से ऊर्ध्वगामी गतिशीलता प्राप्त करने में एक मध्यम स्तर की जाति की सफलता का पता चलता है। संस्कृतिकरण का एक स्पष्ट उदाहरण 'द्विज' जाति का अनुकरण है, जैसे कि, तथाकथित 'निचली जातियों' द्वारा शाकाहार का प्रयोग। जाति व्यवस्था के भीतर गतिशीलता के लिए यह प्रशस्त तरीका है। हालांकि, जातिगत पदानुक्रम में ऊपर की ओर चढ़ने के इच्छुक निचली जातियों को उच्च जातियों से विरोध का सामना करना पड़ता है।

संस्कृतिकरण के साथ-साथ पश्चिमीकरण की प्रक्रिया ने भी सामाजिक गतिशीलता को संभव बनाया है। पश्चिमीकरण भारत में सभी सांस्कृतिक परिवर्तनों और संस्थागत नवाचारों को संदर्भित करता है क्योंकि यह पश्चिमी देशों विशेषकर ब्रिटिश के साथ राजनीतिक और सांस्कृतिक अनुबंध में आया था। इसमें वैज्ञानिक, तकनीकी और शैक्षणिक संस्थानों की स्थापना, राष्ट्रवाद का उदय, देश में नई राजनीतिक संस्कृति और नेतृत्व शामिल हैं। इस प्रक्रिया में कई उच्च जातियों ने पारंपरिक रीति-रिवाजों को छोड़ दिया और पश्चिमी लोगों की जीवन शैली को अपनाया।

औद्योगिकरण और शहरीकरण की प्रक्रिया (गाँवों से शहरों की ओर लोगों का पलायन) ने जाति संरचना को काफी हद तक प्रभावित किया। औद्योगिक विकास ने लोगों को आजीविका के नए स्रोत प्रदान किए और व्यावसायिक गतिशीलता को संभव बनाया। साथ ही नई परिवहन सुविधाओं के साथ, लगातार संचार का प्रयोग भी बढ़ा। इस कारण सभी जातियों के लोगों ने एक साथ यात्रा की और जातियों के बीच अनुष्ठान शुद्धता और प्रदूषण की प्रचलित विचारधारा का पालन करने का कोई तरीका नहीं बचा । भोजन के बंटवारे के खिलाफ वर्जनाएं कमजोर पड़ने लगीं जब विभिन्न जातियों के औद्योगिक कार्यकर्ता एक साथ रहने लगे और एक साथ काम करने लगे।

शहरों के शहरीकरण और विकास ने भी जाति व्यवस्था के कामकाज को बदल दिया। इस सन्दर्भ में किंग्सले डेविस (1951) ने माना कि शहर की गुमनामी, भीड़, गतिशीलता, धर्मनिरपेक्षता और परिवर्तनशीलता जाति के संचालन को लगभग असंभव बना देती है। घुर्ये (1961) का मानना है कि जाति व्यवस्था की कठोरता में परिवर्तन शहर के जीवन के विकास के कारण थे। एम एन श्रीनिवास (1962) का मानना है कि कस्बों में ब्राह्मणों के प्रवास के कारण गैर-ब्राह्मणों ने उनके प्रति वही सम्मान दिखाने से इनकार कर दिया, जो वे पहले दिखाते थे, और इसने ही अंतरजातीय खाने और पीने की वर्जनाओं को भी कमजोर किया। ब्राह्मणों की श्रेष्ठता को चुनौती दी गई है, जिसे कभी धार्मिक हठधर्मिता माना जाता था जो अतीत में और जन्म पर आधारित था लेकिन अब ऐसा नहीं है।

औद्योगिकीकरण और शहरीकरण के अलावा, देश में स्वतंत्रता के बाद उभरे अन्य कारकों ने जाति व्यवस्था को महत्वपूर्ण रूप से प्रभावित किया। देश में स्वतंत्रता के बाद विभिन्न राजनीतिक और आर्थिक नीतियों और सुधारों की शुरुआत की गई, जिसके कारण स्वतंत्रता के बाद कई बदलाव हुए। सामाजिक-धार्मिक सुधार और आंदोलनों, कुछ राज्यों के विलय से आधुनिक शिक्षा का प्रसार, आधुनिक पेशे का विकास, स्थानिक गतिशीलता और बाजार अर्थव्यवस्था आदि के प्रसार ने आधुनिकीकरण और विकास की प्रक्रिया को तेज किया। नतीजतन, परिवर्तन और जाति व्यवस्था में सामाजिक गतिशीलता की प्रक्रिया ने गति प्राप्त की है।

औद्योगिकरण के विकास से नए व्यावसायिक अवसर उभरे जो अनुष्ठानिक रूप से तटस्थ थे। इन नए व्यवसायों में प्रवेश आधुनिक शिक्षा के माध्यम से प्रदान किए गए तकनीकी कौशल पर आधारित थे। जब अलग-अलग जातियों के लोग आधुनिक व्यावसायिक समायोजन में एक साथ निकट संपर्क में आए , तो इसने जाति के अनुष्ठान, आनुवंशिकता और पदानुक्रमित संरचना और पहलुओं को एक गंभीर झटका दिया।

जाति व्यवस्था के तहत, अंतर्विवाह (Endogamy) (एंडोगैमी) जीवन-साथी के चयन का आधार था। समूह के बाहर शादी करने के लिए गैर-बदलते सामाजिक कानूनों द्वारा एक जाति या उप-जाति के सदस्यों को मना किया जाता है। लेकिन वर्तमान में स्पेशल मैरिज एक्ट, 1954 और हिंदू मैरिज एक्ट, 1955 ने अंतर्विवाह के प्रतिबंधों को हटा दिया है और अंतर-जातीय विवाह को कानूनी रूप से वैध घोषित कर दिया है। बाद में, पश्चिमी दर्शन के प्रभाव, सह-शिक्षा, एक ही कारखाने या कार्यालय में विभिन्न जातियों के पुरुषों और महिलाओं के एक साथ काम करने के कई कारकों ने अंतर-जातीय विवाह और प्रेम-विवाह, देर से विवाह और लिव-इन-रिलेशनशिप के मामलों में वृद्धि में योगदान दिया है।

राम कृष्ण मुखर्जी (1958) ने कहा कि आर्थिक पहलू (व्यावसायिक विशेषज्ञता में बदलाव) और सामाजिक पहलू (उच्च जाति के रीति-रिवाजों को अपनाना, प्रदूषण फैलाने वाले व्यवसायों को छोड़ना आदि) दोनों ने जाति व्यवस्था को बहुत हद तक बदल दिया है। उन्होंने कहा कि शहरी क्षेत्रों में परिवर्तन अधिक विशिष्ट है जहां सामाजिक संपर्क पर नियम

हैं, और जातियों के साथ सहभोजन बढावा दिया है और निचली जातियों के नागरिक और धार्मिक निर्योग्यताएँ को हटा दिया गया है। बहुत से बहुत से विद्वानों का दृष्टिकोण है कि जाति व्यवस्था के भीतर धीरे-धीरे परिवर्तन हो रहे हैं लेकिन वे समग्र रूप से व्यवस्था के लिए विघटनकारी नहीं हैं। इस सन्दर्भ में घुर्ये (1961) का मत था कि जाति ने अपनी कुछ विशेषताओं को छोड़ दिया है। उन्होंने कहा कि, 'जाति अब किसी व्यक्ति के व्यवसाय का कठोरता से निर्धारण नहीं करती है लेकिन जाति के भीतर विवाह के बारे में अपने मानदंडों को निर्धारित करना जारी रखती है।' शादी, जन्म और मृत्यु जैसे महत्वपूर्ण समय पर मदद के लिए किसी एक जाति पर बहुत अधिक निर्भर रहना पड़ता है। "उनका मानना था कि सामाजिक जीवन में जाति व्यवस्था की ताकत आज भी उतनी ही मजबूत है जितनी पहले थी। हालांकि आंद्रे बेतेइ ने जाति व्यवस्था में होने वाले परिवर्तनों के संदर्भ में जातियों, जीवन शैली, समानता और सहभोजन के बीच अपनी संरचनात्मक दूरी के संदर्भ में बताया है। विद्वानों ने यह भी कहा है कि जाति ने शुद्धता और प्रदूषण के अपने पारंपरिक तत्वों को खो दिया है और वह एक पहचान समूह के रूप में विकसित हुई है। (शर्मा, के)

4.4.1 जाति और राजनीति

एक जाति के दूसरे पर प्रभुत्व की घटना जाति व्यवस्था के बने रहने का एक महत्वपूर्ण कारक थी। परंपरागत रूप से, आर्थिक और राजनीतिक प्रभुत्व संस्कार के प्रभुत्व के साथ मेल खाता था। श्रीनिवास (1966) के अनुसार किसी जाति को तब प्रमुख कहा जाता है जब वह गाँव या स्थानीय क्षेत्र में संख्यात्मक रूप से सबसे मजबूत होती है और यह आर्थिक और राजनीतिक रूप से बड़ा प्रभाव डालती है। इस तरह के कारक एक विशेष जाति समूह को राजनीतिक प्रभुत्व की स्थिति में रखने के लिए गठबंधन करते हैं

समाजशास्त्रियों ने जाति के संदर्भ में राजनीतिक विश्लेषण किया है और समय के साथ से जाति के राजनीतिक विकास का पता लगाया है। उन्होंने राजनीतिक सत्ता हासिल करने के लिए जाति की भूमिका और राजनीति से इसके जुड़ाव का विश्लेषण किया है। संसदीय लोकतंत्र की प्रणाली, वयस्क मताधिकार, लोकतांत्रिक विकेंद्रीकरण और पंचायती राज की प्रणाली ने राजनीति को जमीनी स्तर पर ले जाता है जहां जाति चुनावी राजनीति में एक प्रमुख चर बन जाती है। राजनीति में संगठित पार्टी प्रणाली की माँगों ने जातियों के गठजोड़ को जन्म दिया है और जाति आधारित राजनीति ने जाति के महत्व को बढ़ावा दिया है । यह जाति लामबंदी और साथ ही राजनीतिक लाभ, भौतिक कल्याण, सामाजिक स्थिति और जातिगत गठजोड़ के लिए एकीकरण का कारक रही है। (देखें कोठारी, आर. (सं.) 1970: भारतीय राजनीति में जाति, ओरिएंट लैंगमैन, नई दिल्ली)

आधुनिक राजनीतिक व्यवस्था संविधान द्वारा सार्वभौमिक है और यह जाति के कारक को विशेषाधिकार में नहीं लेती है लेकिन व्यवहार में, जमीनी स्तर पर, जातिगत विचार लोकतांत्रिक राजनीतिक प्रक्रिया में एक प्रमुख स्थान पर स्थापित हो गए हैं। उनकी भूमिका के संदर्भ में जाति आधारित राजनीतिक चेतना, जाति सभा या जाति संघों और भारतीय राजनीति और राजनीतिक गोलबंदी में स्पष्ट है।

रजनी कोठारी ने जाति और राजनीति के बीच संबंधों की जांच की है। उन्होंने पाया कि उन्होंने शिक्षा के कारकों, सरकारी संरक्षण और मताधिकार का विस्तार करने जाति व्यवस्था को प्रभावित किया, जिससे देश में लोकतांत्रिक राजनीति प्रभावित हुई। आर्थिक अवसर, प्रशासनिक संरक्षण बढ़ती चेतना, सामाजिक से दृष्टिकोण बदल रहा है। नए अवसरों की मान्यता और बढ़ती चेतना और आकांक्षाओं ने जाति को राजनीति और राजनीतिक गोलबंदी में खींच लिया है।

विभिन्न दलों और आंदोलनों ने जाति आधारित स्थिति समूहों को अपने राजनीतिक हित के लिए संसाधनों के रूप में जुटाया। बहुत बार उम्मीदवारों को उनकी जातिगत पहचान के आधार पर राजनीतिक दलों द्वारा मैदान में उतारा जाता है। जाति संगठित पार्टी की राजनीति के लिए जुटाव और समर्थन की एक पहले से तैयार प्रणाली प्रदान करती है। विभिन्न जाति महासंघ हैं जो अपने सामान्य पाठ्यक्रम के लिए लड़ने के लिए एक संगठित राजनीतिक मंच प्रदान करते हैं। उदाहरण के लिए, गुजरात की क्षेत्रिय सभा एक सक्रिय जाति महासंघ का चित्रण है। इसमें जाति या जाति के समूह शामिल हैं, जो जाति आधारित राजनीतिक समुदाय की तरह काम करते हैं। इस प्रकार, जाति राजनीतिक महत्व का एक कारक है और यह राजनीति के साथ निकटता से जुड़ा हुआ है।

4.4.2 जातिगत भेदभाव को रोकने के उपाय

स्वतंत्रता के बाद शिक्षा के प्रसार और सामाजिक सुधार आंदोलनों ने सामाजिक और आर्थिक रूप से पिछड़ी जातियों और वर्गों की मुक्ति में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। इसी के प्रभाव के कारण विभिन्न अन्य कानूनी संवैधानिक उपायों में जाति और अन्य कारकों के आधार पर भेदभाव निषेध है। हमारा संविधान समानता, स्वतंत्रता और बंधुत्व के लोकतांत्रिक मूल्यों पर आधारित है। यह किसी भी भेदभाव की अनुमति नहीं देता है। संवैधानिक जनादेश को पूरा करने के लिए, संसद में कई अधिनियमों को पारित किया गया है ताकि अंतिम अपराधियों के खिलाफ शोषणकारी और भेदभावपूर्ण प्रथाओं को समाप्त किया जा सके। भारत सरकार ने अस्पृश्यता को दूर करने के लिए कानून बनाए हैं। इसने समाज के कमजोर वर्गों के जीवन की गुणवत्ता में सुधार के लिए कई सुधार भी किए हैं। उनमें से कुछ हैं :

i) मौलिक मानवाधिकारों की संवैधानिक रूप से गारंटी

ii) 1950 में अस्पृश्यता का उन्मूलन

iii) अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति (अत्याचार निवारण) अधिनियम, 1989 और

iv) शैक्षणिक संस्थानों, रोजगार और अन्य अवसरों में आरक्षण का प्रावधान,

v) 1976 में अनुसूचित जातियों और जनजातियों के कल्याण के लिए समाज कल्याण और राष्ट्रीय आयोगों की स्थापना और अस्पृश्यता (अपराध) अधिनियम, 1955 को नागरिक सुरक्षा अधिनियम का नाम दिया गया।

एससी और एसटी अधिनियम, 1989 उनके खिलाफ गतिविधियों की जाँच, बचाव और रोकथाम के लिए महत्वपूर्ण उपायों में से एक है। मैला ढोने वाले (मैनुअल स्कैवेंजर्स) के रूप में रोजगार के निषेध और उनके पुनर्वास के लिए एक अधिनियम, 2013 भी है। इस अधिनियम का उद्देश्य मैला ढोने के रोजगार को रोकना, बिना सुरक्षात्मक उपकरणों के सीवरों और सेप्टिक टैंकों की मनुष्यों द्वारा सफाई, और स्वास्थ्य के लिए हानिकारक शौचालयों के निर्माण पर रोक लगाना है । अधिनियम मैला ढोने वालों का पुनर्वास करना चाहता है और उन्हें वैकल्पिक रोजगार प्रदान करना चाहता है।

सोचिये और करिये 2

अपने दोस्तों के साथ कानूनी उपायों और विभिन्न कदमों के बारे में चर्चा करें, जो हमारे संविधान भारतीय समाज में जातिगत भेदभाव को रोकने के लिए प्रदान करते हैं। इस चर्चा पर एक पृष्ठ की एक रिपोर्ट लिखें और अपने अध्ययन केंद्र में अपने सहकर्मी समूह के साथ इस पर चर्चा करें।

भारत का संविधान एक समानतावादी समाज बनाने की प्रक्रिया को सुविधाजनक बनाने के लिए विभिन्न अनुच्छेदों के तहत सुरक्षात्मक भेदभाव के लिए उपाय प्रदान करता है। संविधान अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों को अधिमान्य उपचार देता है। इस प्रकार आरक्षण उन्हें सामाजिक और आर्थिक रूप से उत्थान करने के लिए सत्ता, राजनीति, सेवाओं, रोजगार में हिस्सेदारी देने की रणनीति रही है । 1950 में, संविधान ने अनुसूचित जातियों के लिए 12.5% और अनुसूचित जनजातियों के लिए 5ः आरक्षण दिया, लेकिन बाद में 1970 में, इसे SC के लिए 15% और ST के लिए 7.5% कर दिया गया। आरक्षण नौकरियों, शैक्षणिक संस्थानों में प्रवेश और केंद्रीय और राज्य विधानसभाओं में प्रदान किया गया था। तदनुसार, सभी राज्य सरकारों ने राज्य में एससी और एसटी को सेवाओं और अन्य क्षेत्रों के लिए आरक्षण प्रदान करने के लिए कानून बनाए। भारत के संविधान में अन्य पिछड़ा वर्ग ओबीसी) के लिए विशेष प्रावधान है, जिसमें उनके लिए ओबीसी शब्द का उपयोग किया जाता है। संविधान का अनुच्छेद 15 (4) उन्हें, नागरिकों के सामाजिक और शैक्षिक रूप से पिछड़े वर्गों के रूप में संदर्भित करता है। अनुच्छेद 340, उन्हें 'सामाजिक और शैक्षणिक रूप से पिछड़े वर्गों के रूप में संदर्भित करता है। अनुच्छेद 16 (4) उन्हें केवल पिछड़े वर्ग के नागरिकों के रूप में संदर्भित करता है। अनुच्छेद 46 उन्हें शैक्षिक और लोगों के आर्थिक रूप से कमजोर वर्गों के रूप में संदर्भित करता है। अन्य पिछड़ा वर्ग या ओबीसी की उन्नति के लिए हमारे संविधान में विभिन्न अनुच्छेदों में कई प्रावधान हैं।

हालाँकि, आरक्षण का मुद्दा अधिक जटिल है, विशेष रूप से अखिल भारतीय स्तर पर। जमीनी हकीकत ने दिखा दिया है कि गरीबों और वंचितों की हालत सुधारने के लिए कई उपाय कारगर नहीं हैं। इसलिए, आरक्षण के मानदंडों के मुद्दे को बार-बार उठाया गया है। समय-समय पर इसके मूल्यांकन और नीति निर्माण की आवश्यकता है।

अंतिम विश्लेषण में हम मानते हैं कि समाज में होने वाले परिवर्तनों के कारण जाति पारंपरिक कार्यों, मानदंडों और संरचना को खो रही है लेकिन जाति अभी भी मौजूद है। यह बदले हुए वातावरण, स्थिति और मानसिकता के अनुरूप नया 'अवतार' प्राप्त कर रहा है।

जाति खुद को संशोधित कर रही है लेकिन अभी भी कायम है, खासकर ग्रामीण इलाकों में। शहरी क्षेत्रों में, जाति हित और वर्ग समूहों के जटिल नेटवर्क के रूप में बनी हुई है। हालाँकि भारतीय समाज की एक गतिशील वास्तविकता के रूप में जाति में कई परिवर्तन हुए हैं और अभी भी निरंतरता के तत्व मौजूद हैं। एक पहचान समूह के रूप में जाति व्यवस्था भारतीय समाज की एक अनूठी सामाजिक संस्था के रूप में मौजूद है।

बोध प्रश्न 2

नोट :1) अपने उत्तरों के लिए नीचे दिए गए स्थान का प्रयोग कीजिए।

2) इकाई के अंत में दिए गए उत्तरों से अपने उत्तर मिलाइए।

1) दस पंक्तियों में समकालीन भारत में जाति व्यवस्था कैसे बदल गई है, इस पर संक्षिप्त चर्चा करें।

.....

.....

.....

.....

.....

2) भारतीय संविधान निम्न जातियों को भेदभाव से बचाने में कैसे मदद करता है? इस प्रश्न का उत्तर देने के लिए लगभग 10 पंक्तियों का उपयोग कीजिए ।

.....

.....

.....

.....

.....

4.5 सारांश

हमने जाति और उसके इतिहास की विशेषताओं के बारे में संक्षेप में बताया है। यह पदानुक्रम के साथ जुड़ा हुआ है और जजमानी प्रणाली के रूप में ग्रामीण क्षेत्रों में मौजूद है। पदानुक्रम के अलावा, जाति प्रणाली में श्रम के व्यवसाय वाले विभाजन की विशेषता है, जो कि एक साथ 'कच्चे' या 'पक्के' खाने और सामाजिक संपर्क, नागरिक और धार्मिक विकलांग, विभिन्न वर्गों के विशेषाधिकार, विवाह और प्रतिबंधों द्वारा प्रतिबंधित है। इस सन्दर्भ में व्यवसायों की पसंद, जाति व्यवस्था के भीतर परिवर्तन और निरंतरता को समझाया गया है। जाति और राजनीति के संबंध को पंचायती राज की संस्था में जाति की भूमिका के विशेष संदर्भ के साथ भी समझाया गया है। पिछले भाग में, हमारे संविधान के निर्माण के दौरान सरकार द्वारा उठाए गए जातिगत भेदभाव को रोकने के उपायों के बारे में बताया गया है। निष्कर्ष रूप में, व्यवस्था के भीतर जाति की व्यवस्था, परिवर्तन और निरंतरता की वर्तमान स्थिति को समझाया गया है।

4.6 संदर्भ

श्रीनिवास एम.एन.1962. आधुनिक भारत में जाति और अन्य निबंध, मीडिया प्रकाशक, बॉम्बे।

श्रीनिवास, एम.एन. 1952. दक्षिण भारत के कूर्गों के बीच धर्म और समाज, मीडिया प्रचारक और प्रकाशक प्रा. लि., बंबई।

घुर्ये, जी.एस. जाति, वर्ग और व्यवसाय - लोकप्रिय प्रकाशन, 1961 बॉम्बे।

आहूजा, राम इंडियन सोशल सिस्टम, रावत पब्लिकेशन, 1966 नई दिल्ली। (प्रामाणिक स्रोत नहीं)

इग्नू बीडीपी सामग्री पर (2017 (पुनर्मुद्रण) ईएसओ -12, ब्लॉक 5 जाति और वर्ग और समाज और स्तरीकरणय भारतीय समाज ईएसओ- 14 में ब्लॉक 5 स्पष्टीकरण जाति।

4.7 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

1) जाति, वर्ण (या रंग) के अखिल भारतीय दर्शन के भीतर, जाति और उपजाति के अपने क्षेत्रीय जाति पदानुक्रम के आधार पर हिंदू समाज को अलग-अलग खंडों में विभाजित करती है। यह पदानुक्रम जन्म आधारित है यानी किसी को उस वर्ण या जाति में और यह अनुष्ठान शुद्धता और प्रदूषण पर आधारित है।

2) जाति व्यवस्था को समझने के लिए गुणात्मक दृष्टिकोण जाति की समझ पर आधारित है जो विभिन्न विशेषताओं की दृष्टि से है। जैसे पदानुक्रम, शुद्धता और प्रदूषण व्यवसाय, आदि। इस दृष्टिकोण का उपयोग जी.एस घुर्ये, जैसे समाजशास्त्रियों द्वारा किया गया है

बोध प्रश्न 2

1) जाति व्यवस्था को वर्ग के विपरीत स्तरीकरण की एक बंद प्रणाली माना जाता है। हालांकि, समाजशास्त्रियों ने अपने अध्ययन में पाया है कि निचले समूहों से लेकर उच्च स्तर तक के जाति समूहों के आंदोलन के संदर्भ में सामाजिक गतिशीलता हमेशा से थी। परंतु, स्वतंत्रता के बाद, हमारे संविधान में निहित लोकतंत्र की एक सार्वभौमिक राजनीतिक प्रणाली द्वारा लाए गए परिवर्तनों के साथ-साथ संस्कृतकरण, पश्चिमीकरण और आधुनिकीकरण की प्रक्रिया ने समाज में तेजी से बदलाव लाने में मदद की। इसके कारण जाति व्यवस्था में बदलाव आया लेकिन अभी तक कुछ कठोर तत्वों, जैसे, पहचान और राजनीति से इसके जुड़ाव अभी भी भारत में समाज को आकार दे रहे हैं।

2) भारतीय संविधान भारत के सभी नागरिकों के लिए समानता, स्वतंत्रता और बंधुत्व लाने के अपने जनादेश के माध्यम से अपने नागरिकों को कुछ संवैधानिक उपायों जैसेः

   i) अस्पृश्यता का उन्मूलन

   ii) मौलिक मानवाधिकारों की संवैधानिक रूप से गारंटी।

   iii) एससी, एसटी और ओबीसी के लिए सीटों का आरक्षण उनकी सामाजिक और आर्थिक स्थिति को सुधारने के लिए भविष्य कहे जाने वाले भेदभाव के उपायों के रूप में और सामाजिक न्याय और समाज में समानता लाने के लिए, और इसी तरह अन्य उपाय।

4.8 शब्दावली

कच्चा भोजन : यह पानी में पकाया जाने वाला भोजन है

पक्का खाना : यह तेल में पकाया जाने वाला भोजन है

पवित्रता और प्रदूषण : यह एक विचारधारा है जो एक व्यक्ति या वस्तु या रंग को पूरी तरह से शुद्ध (शुद्धता) और अन्य अनुष्ठान अशुद्ध और अशुद्ध (प्रदूषण) मानती है

एक की जाति के भीतर विवाह की प्रणाली के रूप में अंतर्विवाह (एंडोगैमी)

द्विजः आम तौर पर ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य जैसे सवर्णों को एक 'उपनयन समारोह' से गुजरना पड़ता था और उन्हें पवित्र धागा पहनना होता था, जो उन्हें द्विज के रूप में उभार देता था ष। इसका मतलब था कि एक व्यक्ति (पुरुष) का न केवल शारीरिक जन्म हुआ है, बल्कि आध्यात्मिक जन्म भी हुआ है।

पश्चिमीकरण : पश्चिमी जीवनशैली और मूल्यों को अपनाने की प्रक्रिया है, खासकर अंग्रेजों की सहभोजिता (कमेंसिटी) एक साथ खाने की या एक साथ बैठने की क्रिया है

पंचायती राज स्थानीय स्वशासन की प्रणाली है

इकाई 5 वर्ग*

इकाई की रूपरेखा

5.0 उद्देश्य

5.1 प्रस्तावना

5.2 भारत में सामाजिक वर्ग

5.3 भारत में वर्ग निर्माण में अंग्रेजी शासन का योगदान

- 5.3.1 कृषि व्यवस्था में परिवर्तन
- 5.3.2 व्यापार एवं उद्यम
- 5.3.3 रेलवे का विकास तथा उद्योग
- 5.3.4 राज्य तथा प्रशासनिक प्रणाली

5.4 सामाजिक वर्गों की असमान वृद्धि

5.5 ग्रामीण भारत में सामाजिक वर्ग

- 5.5.1 जमींदार
- 5.5.2 किसान परिसम्पत्तियां
- 5.5.3 जोतदार
- 5.5.4 कृषि-मजदूर
- 5.5.5 कारीगर

5.6 नगरों में सामाजिक वर्ग

- 5.6.1 वाणिज्यिक एवं औद्योगिक वर्ग
- 5.6.2 व्यावसायिक क्षेत्र
- 5.6.3 व्यावसायिक वर्ग
- 5.6.4 लघु व्यापारी, दुकानदार तथा असंगठित कामगार
- 5.6.5 नौकरी पेशा वर्ग

5.7 सारांश

5.8 संदर्भ

5.9 बोध प्रश्नों के उत्तर

5.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद, आप जानेंगे :

- भारत में सामाजिक वर्गों की अवधारणा की परिभाषा;
- भारत में वर्ग निर्माण पर ब्रिटिश हुकुमत का प्रभाव;
- भारत में सामाजिक वर्ग के असमान वृद्धि के कारण एवं विश्लेषण; और
- भारत में ग्रामीण वर्ग तथा नगरीय वर्ग।

5.1 प्रस्तावना

पहले वाली इकाई में हमने सामाजिक संरचना और जाति प्रथा के बारे में पढ़ा। आपने जाना कि भारतीय समाज में जातिवाद की जड़े कितनी गहरी हैं। इस इकाई में हम भारतीय

*BDP ESO-12 डॉ अर्चना सिंह से अनुकूलित/राजेंद्र पांडे, शास्वत कुमार

सामाजिक संरचना के एक और आयाम के बारे में अध्ययन करेंगे, जिसे वर्ग कहा जाता है। भारत में अंग्रेजी शासन काल में वर्गों की स्थिति तथा अंग्रेजी शासन के बाद वर्गों को स्थिति के बारे में जानकारी प्राप्त करेंगे तथा भारत के गांवों व नगरों में वर्गों की स्थिति के बारे में जानेंगे।

5.2 भारत में सामाजिक वर्ग

समाजिक वर्गों को सामाजिक समूहों के रूप में देखा जाता है। सामाजिक वर्गों की यह परिभाषा किसी भी तरह चूंकि संगत नहीं है ऐसे लोगों के समूहों को सामाजिक वर्ग कहा जा सकता है जिनकी सामाजिक हैसियत अथवा सामाजिक स्तर एक जैसा हो। वित्तीय स्थिति, शिक्षा, व्यवसाय आदि के आधार पर समाज के लोगों को वर्गों में विभाजित किया जा सकता है। कोई भी व्यक्ति समाज में जिस वर्ग के अनुसार अपनी हैसियत बना लेता है, वह उसी वर्ग में गिना जाने लगता है। समाज में अनेक वर्ग होते है। प्रायः माली-हालात के हिसाब से समाज के लोगों को विभिन्न वर्गों में बाँटकर देखा जाता है।

लोगों के खान-पान, वस्त्र आदि अनेक गतिविधियों से उनके वर्ग को पहचाना जाता है। औद्योगिक समाज का वर्ग अलग दिखाई पड़ता है, और अंततः समाज बड़े वर्गों में बंटा स्पष्ट नज़र आता है। एक पूंजीपति वर्ग तथा दूसरा श्रमिक वर्ग।

ब्रिटिश हुकूमत के काल में हिन्दुस्तान में सामाजिक वर्ग उत्पन्न हो गये थे। ब्रिटिश शासन काल से पहले वर्ग उतने स्पष्ट नहीं थे। ग्रामों में तो ब्रिटिश शासन काल में भी वर्ग अलग-अलग नहीं दिखे क्योंकि ग्रामीण जन लगभग एक सी जिंदगी जीते थे। कम आवश्यकताओं वाला ग्रामीण समाज खेती में उत्पादन से जो भी मिल जाता था, उसी में संतुष्ट व खुश था।

पर हाँ गांवों में जाति के आधार पर वर्ग जरूर थे। दूसरा वर्ग शासितों व शासकों का था। जमींदारों की श्रेणी में आने वाले लोगों का एक वर्ग था तथा उनके तहत किराया के रूप में जीने वालों का दूसरा वर्ग था। अंग्रेजी हुकूमरानों दरबारी तथा उस काल से पहले अन्य शासकों के दरबारी जमींदार कहलाते थे। जमींदार ग्रामीण जनता से शासकों के आदेश पर उनके साथ मिलकर कर वसूला करते थे।

इसके अलावा प्रशासनिक अधिकारियों का एक वर्ग था, कारीगरों का एक वर्ग था तथा विभिन्न मामलों के विशेषज्ञों के भी वर्ग थे।

भारतीय इतिहास में औपनिवेशिक शासन ने बड़ी भूमिका निभाई। अंग्रेजों ने नये नियम लागू किये जिसे भारतीय समाज में अनेक आमूल-चूल परिवर्तन हुये। भारतीय समाज में ब्रिटिश-काल में आये परिवर्तनों को समझने के लिए हमें उस काल का अध्ययन करना होगा।

5.3 भारत में वर्गों की संरचना पर ब्रिटिश शासन का प्रभाव

ब्रिटिश शासन का भारतीय समाज पर बड़ा प्रभाव पड़ा। इससे समाज में जो परिवर्तन आये, उसका निवारण इस प्रकार है।

5.3.1 कृषि क्षेत्र में परिवर्तन

ब्रिटिश शासन ने भारतीय आर्थिक ढांचे को पूरी तरह बदल डाला। पारंपरिक भूमि-प्रणाली को बदल दिया गया। गांवों की जमीनों पर गांव वालों के अधिकार समाप्त कर दिये गये। 18वीं शताब्दी में ब्रिटिश सरकार ने कृषि सुधार कानून लागू किया। स्थायी बंदोबस्त, रैयतवाड़ी बंदोबस्त, तथा महावाड़ी बंदोबस्त आदि सुधारों को लागू करके जमीन को

जमींदारों की निजी सम्पत्ति बना दिया गया। उसे अब बाजार में वस्तु की तरह बेचा जा सकता था। इसे गिरवी रखा जा सकता था।

जब तक गांवों की जमीनों पर गांववालों का कब्जा हुआ करता था, तब तक हर गांव एक ठोस इकाई था। नई कर प्रणाली ने गाँव का एक इकाई वाला चरित्र समाप्त कर दिया। अब जमीन व्यक्तिगत सम्पत्ति हो गई । जिस पर जमीन होगी, वह कर देगा पहले कराधान प्रथा यह थी कि किसान सालाना पैदावार का एक हिस्सा शासक को दिया करता था। इसके स्थान पर अब एक मुश्त राशि का भुगतान करने का कानून बना दिया गया चाहे जमीन में पैदावार कम हो या ज्यादा या फिर हो ही नहीं। इससे जहाँ एक ओर जमीन जोतने वालों को नकद कर चुकाने में परेशानियों का सामना करना पड़ने लगा वही देश को एक बड़ा लाभ यह हुआ कि रेलवे तथा यातायात के अनेक साधन चलन में आने से कृषि वाणिज्य में बदलने लगी तथा व्यापार व वाणिज्य प्रणाली का स्वतः ही विकास होने लगा।

5.3.2 व्यापार एवं वाणिज्य

भारत में जो व्यापार व वाणिज्य प्रणाली का उदय हुआ, वह दो तथ्यों पर आधारित थी। कृषि में पैदा होने वाली चीजें कच्ची अवस्था में ज्यों की त्यों ब्रिटेन के उद्योगों के लिए भेजी जाने लगीं। इसके बदले में ब्रिटेन के कारखानों में बनी वस्तुयें भारत के बाजार में बिकने लगीं।

इससे भारत को अपने मौलिक ग्रामीण स्तरीय हथ-करघा उद्योग, चौपट हो गये। गांवों तथा शहरों में हथ-करघा उद्योग की जो इकाइयां थी वे सब तेजी से ध्वस्त होती गई और ब्रिटेन में बने माल के ग्राहक भारत में बढ़ते गये। देश में औद्योगिक विकास हुआ ही नहीं। नतीजा यह हुआ कि देश में बेकारी और बरोजगारी बढ़ गई। विवश होकर लोगों को पेट भरने के लिए खेती में ही जुटना पड़ा। शिक्षा में रुचि कट गई।

5.3.3 रेलवे तथा उद्योगों की विकास

व्यापार तथा वाणिज्य के क्षेत्रों में विकास होने से यातायात के साधनों का तेजी से विकास शुरू हो गया। 19वीं शताब्दी को मध्य तक देश में रेलवे लाइनों का जाल बिछाया जाने लगा। ये रेलगाड़ियों इसलिए चलाई गई थीं कि देश के दूर-दराज इलाकों से कच्ची माल लाद कर बंदरगाहों तक ले जाएं और वहां से इसे ब्रिटेन की औद्योगिक इकाइयों के पास भेजा जा सके। माल की ढुलाई हेतु सड़कें भी बनाई जाने लगी। सड़क तथा रेल मार्ग बनाने में ब्रिटिश सरकार ने भारत में अति निवेश किया जिससे भारत का विकास होने लगा। कानून व व्यवस्था बनाये रखने के लिए पुलिस तथा सैन्य बलों को एक स्थान से दूसरे स्थान पर पहुँचाने के लिए गाड़ियों तथा सड़क मार्ग तेजी से बनाये जाने लगे। चाय तथा नील की खेती की बढ़ावा देने के लिए ब्रिटिश पूंजी भारत में लगाई गई। कपास, सुत तथा खनन के लिए खानों को तैयार कराने में ब्रिटिश पूंजी का निवेश किया गया। भारत में औद्योगीकरण प्रथा का बीज बो दिया गया था। यद्यपि इसके पीछे ब्रिटेन का अपना स्वार्थ था, पर लाभ भारत को भी हुआ। भारत के व्यापारी तथा उद्यमी इस अवसर का लाभ उठाकर मालामाल होने लगे। यही से पूंजी बनाने के बाद भारत के उद्योगपत्तियों ने भारत में उद्योगों की नींव डाली।

5.3.4 राज्य तथा प्रशासनिक प्रणाली

इन गतिविधियों से पहले ब्रिटिश हुकूमत राज्य स्तर पर प्रशासकों की एक अच्छी टीम तैयार कर चुकी थी जो राज्यों को शासन व्यवस्था चलाते थे। बड़ी संख्या में पढ़े-लिखे लोग प्रशासन की इस मशीनरी को चलाने के लिए चाहिए थे। ब्रिटेन से इतनी बड़ी संख्या में पढ़े

लिखे लोगों को भारत लाना संभव नहीं था। इसलिए विदेशी शासकों ने भारत में अंग्रेजी शिक्षा प्रणाली लागू की। भारत में अंग्रेजी प्रणाली की शिक्षा प्रदत्त करने के लिए बड़े स्तर पर स्कूल, कॉलेज तथा विश्वविद्यालय खोले गये।

परिणामतः भारत में बड़ी संख्या में लोग अंग्रेज प्रणाली की शिक्षा की ओर अग्रसर हुये और भारत में सामाजिक वर्ग तेजी से बढ़ने लगे । भारत में बढ़ोतरी हुई, इसका विशुद्ध अध्ययन अगले अध्यायों में किया जायेगा।

सोचिये और करिये 1

कम से कम पांच ऐसे लोग तलासीये जिनमें आपके पिता, पितामह तथा उनके पिता व पितामह शामिल हों तथा उनसे निवेदन करिये कि वे आप को ब्रिटिश शासन माल में भारत में हुये परिवर्तनों के बारे में बताएं।

अब दो पृष्ठों में एक संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए। संभव हो सके तो पांच व्यक्तियों द्वारा तैयार किये गये लेखों की तुलना कीजिए।

5.4 सामाजिक वर्गों का असमान विकास

भारत में इतनी हड़बड़ी में सामाजिक वर्ग ब्रिटिश शासनकाल में उदय हुआ था कि उन सब का ठीक से विकास नहीं हो पाया। जो बदले हुए पर्यावरण का फायदा उठाने की स्थिति में थे, वे अधिक विकसित हो गये जो नहीं उठा सके वे पिछड़ गये।

जो पिछड़ गये थे उन्हें मजदूरी करनी पड़ी जो आगे बढ़ गये, उनमें से ही कुछ ने उद्योगों की स्थापना की और कुछ अन्य प्रकार की प्रतिभाओं को विकसित करने में सफल हुये। इसी का प्रतिफल था कि बंगाल में जमींदार और काश्तकार की पहचान वाले दो अलग-अलग वर्ग बन गये। बंगाल और मुम्बई में उद्योगों की स्थापना हुई और इन दोनों क्षेत्रों में पूंजीपत्ति व मजदूर की पहचान वाले दो वर्गों का उदय हुआ। बाद में पूंजीपति तथा श्रमिक वर्ग पूरे देश में दिखाई देने लगे।

बंगाल और मुम्बई ऐसे क्षेत्र थे जहां अंग्रेजों ने जटिल प्रशासनिक प्रणाली विकसित की थी और बंगाल तथा मुम्बई में से सबसे पहले अंग्रेजी शिक्षा प्रणाली व्यापक रूप से लागू की गई।

विभिन्न समुदायों में जो अलग-अलग प्रकार के वर्ग बने। उनका विकास भी असमान ही हुआ था। अंग्रेजों के भारत में आने से पहले भी भारत में अपने प्रकार के जाति आधारित तथा व्यवसाय अथवा कार्य आधारित वर्ग विद्यमान थे। जैसे बनिये या वैश्य व्यापार से जुड़े थे। जब अंग्रेजों ने वाणिज्य व व्यापार को बढ़ावा दिया तो सबसे पहले बनिये उसमें शामिल हो गये। बैंकों तथा उद्योगों में प्रायः बनियों ने रुचि ली (मिश्रा, 1978 : 14)।

ब्राह्मण नाम का दूसरा वर्ग भारत में अंग्रेजों के आगमन तथा ब्रिटिश शासन से पहले ही मौजूद था। जब भारत में पश्चिमी तर्ज की शिक्षा प्रणाली लागू हुई तो बड़ी संख्या में ब्राह्मण, उसमें शामिल हो गया और वे पढ़-लिखकर शिक्षक व प्रोफेसर बन गये।

जब भारत आजाद हुआ तो भारत का सामाजिक ढांचा कुछ इस प्रकार का था कि इसमें विभिन्न जातियां तथा वर्ग शामिल थे। कुछ मामलों में दोनों ने एक दूसरे को सहयोग दिया, कुछ में नहीं।

बोध प्रश्न 1

नोट :1) अपने उत्तरों के लिए नीचे दिए गए स्थान का प्रयोग कीजिए।

2) इकाई के अंत में दिए गए उत्तरों से अपने उत्तर मिलाइए।

1) सामाजिक वर्ग की अवधारणा की व्याख्या कीजिए। सात पंक्तियों में उत्तर दें।

.....

.....

.....

.....

.....

.....

2) कुछ ऐसे परिवर्तनों की सूची बनाइये जो भारत में सामाजिक वर्गों के उदय के लिए जिम्मेदार थे। तीन पंक्तियों में उत्तर दीजिए।

.....

.....

.....

.....

.....

.....

3) ऐसे दो वर्गों के नाम बताइये, जिनका सामाजिक वर्गों के रूप में जिनका असमान विकास हुआ। दो पंक्तियों में उत्तर दीजिए।

.....

.....

.....

.....

.....

5.5 ग्रामीण भारत में सामाजिक वर्ग

ग्रामीण क्षेत्रों में प्रायः जिन सामाजिक वर्गों का उदय हुआ, वे थे - (i) जमींदार (ii) रियाया (iii) किसान (iv) कृषि मजदूर (या भूमिहर मजदूर) (v) कारीगर (हाथ के कलाकार)। आइये अब इनका विश्लेषण करें।

5.5.1 जमींदार या भूस्वामी

ब्रिटिश प्रशासन ने भारत में अनेक प्रकार की भूमि सुधार व्यवस्थायें लागू कीं। जैसे स्थायी बंदोबस्त, रैयतकारी बंदोबस्त तथा महालवाड़ी बंदोबस्त।

स्थायी बंदोबस्त के अंतर्गत टैक्स इक्ट्ठा करने के लिए जमींदारों को नियुक्त किया जाता था। जमीनों का मालिकाना हक जमींदारों को दे दिया जाता था। इससे पहले जमीने पट्टे पर उठाई जाती थीं। इसी के आधीन पट्टे जमींदारों को दे दिये गये क्योंकि कर वसूल करने का अधिकार केवल जमींदारों को ही दिया जाता था और अब जमींदार इन जमीनों के स्थायी मालिक बन गये। इस व्यवस्था के अंतर्गत जमींने जमींदारों की सम्पत्ति इस शर्त के अनुसार बनाई गई थीं कि वे ब्रिटिश सरकार को इसके बदले, एक मुश्त धन राशि जमीन कर के रूप में देते रहेंगे।

इस व्यवस्था के लागू होते ही वे किसान जो पहले जमीनों पर काबिज हुआ करते थे, रातों-रात अपनी जमीन गंवा बैठे और वे इन जमींदारों के लिए खेती करने पर विवश हुये।

यह व्यवस्था लॉर्ड कॉर्नवॉलिस ने 1793 में लागू की थी। जिन क्षेत्रों में पहली बार यह व्यवस्था लागू की गई, वे थे - बंगाल, बिहार, उड़ीसा तथा मद्रास के कुछ जिले। बाद में यह व्यवस्था उत्तर प्रदेश, मुम्बई के कुछ क्षेत्र, पंजाब व सिंध के कुछ क्षेत्र जमींदारी प्रथा के लागू होने से जमीन के मालिकों का एक वर्ग बन गया। इससे पहले भारतीय समाज में ऐसा कोई वर्ग होता ही नहीं था। जिन्हें जमीन का मालिकाना हक मिला था, वे जमीन को गिरवीं भी रख सकते थे और बेच भी सकते थे। यदि किसी कारण से कोई जमीदार अपनी जमीन के बदले अंग्रेजों को कर नहीं दे पाता तो उसकी जमीन की नीलामी करके कर वसूला जाता था।

इस स्थिति का फायदा उन लोगों ने उठाया जो किसी व्यवसाय या व्यापार से जुड़े थे, जिनकी जेब में पैसा था। नीलामी की जमीन लेकर वे जमीन से अलग तरह के मालिक बन गये और समाज में एक और नये वर्ग का उदय हो गया। सूदखोर भी नीलामी की जमीनें लेकर इस वर्ग में शामिल होते गये। जमीन का मालिकाना हक जिनके नाम था वे उसे किराये पर भी दे सकते थे। जमींदारों ने अपनी कुछ जमीन भूमिहीनों को किराये पर दे दी और इस प्रकार छोटे किसानों का एक नया वर्ग पैदा हो गया। लीज़ की एक अवधि हुआ करती थी। इस अवधि के बाद वह फिर से किराये पर उठाई जा सकती थी। जिसका लाभ सूदखोर, व्यापारी तथा अन्य वे लोग भी उठाने लगे जो किराये की रकम चुकाने में सक्षम थे। वे लोग जमीन के बदले पैसे कमाने की योजनायें बनाने लगे। जमीन उन लोगों को हाथों में जाता जो खेती नहीं करते थे। जमींदारों के लिए खतरा था। रैयतवादी व्यवस्था वाले क्षेत्रों में जमीनों का हक उन्हें दे दिया गया जो जमीनों पर खेती करते थे।

भू स्वामियों के प्रकार

अंग्रेजों के भूमि सम्बंधी कानून व्यवहार में लागू होने के बाद देश में दो तरह के भू स्वामी हो गये - (i) जमींदार या ताल्लुकदार (पुराने भू स्वामी) (ii) सूदखोर/साहूकार व्यापारी तथा अन्य। जमींदारों के क्षेत्र में जिन लोगों ने दूसरे प्रकार का भूस्वामित्व हासिल किया था, वे बिचौलिए कहलाए। ये दूसरे प्रकार के भूस्वामियों में समाज के विभिन्न वर्गों से आये लोग थे। ये उत्तर प्रदेश, बंगाल, बिहार तथा उड़ीसा के विभिन्न भागों में मौजूद थे।

कुछ भूस्वामी जमींदारों ने अपनी सुविधा के लिए पैदा किये। ये ताल्लुकदार की हैसियत वाले भूस्वामी बड़ी संख्या में मौजूद थे। वे जमींदारों से जमीन लेकर उसे छोटे छोटे किसानों का खेती करने के लिए दे देते थे। यह जमीन उन्हें बटाई पर दी जाती थी, अतः खेती करने वाले बटाईदार कहलाते थे। इसी प्रकार एक अन्य प्रकार के अस्थाई, भूस्वामी पट्टीदार भी थे। वे जमींदारों से नकद भुगतान करके पट्टे पर जमीनें ले लेते थे और जमीनों के मालिक बन जाते थे। कुछ किसानों को करार के आधार पर एक निश्चित धन राशि की एवज में जमीन दे दी जाती थी ये किसान इजारेदार कहलाते थे।

भूमि सुधार और उनके परिणाम

जब देश आजाद हुआ, तब देश में बिचौलिए किस्म के भूस्वामियों की संख्या सबसे ज्यादा थी। जमीन जोतने वाले लोग खाली जोतदार थे। उनमें से ज्यादातर भूमिहीन थे। उन दिनों देश में आर्थिक असमानता बहुत ज्यादा थी जिसके कारण सामाजिक राजनैतिक क्षेत्रों में भारत में असमानता बहुत बढ़ी हुई थी। इसलिए महात्मा गांधी जैसे देश के शीर्ष नेताओं ने आजादी के तुरंत बाद भूमि सुधार कानून बनाने या विशेष जोर दिया। सबसे पहले भूमि सुधारों में बिचौलियों को समाप्त कर दिया गया। 1950 में जमींदारी प्रथा समाप्त की गई और सबसे पहले, उत्तर प्रदेश में भूमि सुधार कानून लागू किये गये। इसका उद्देश्य था जमीनों पर उन किसानों को हल दिलवाना। इस प्रकार खेती-बाड़ी करने वाले लोग जमीनों के स्वामी बने।

1950 में जमीदारी प्रथा समाप्त होने के अनेक महत्वपूर्ण परिणाम सामने आये। इससे देश में नये वर्गों का जन्म हुआ। जैसे बिचौलिये जो जमीदारों की तरह ही थे जमीन के मालिक घोषित कर दिये गये। आरम्भ में जमीदार अपनी जमीनों की जुताई करने वाले लोगों को लीज़ पर उठा दिया करते थे लेकिन जब उत्तर प्रदेश जैसे राज्यों में जमीदारी प्रथा समाप्त हुई तो सरकार ने केवल उन्हीं जमीनों पर जमीदारों को मालिकाना हक दिया जिस पर वो स्वयं खेती कर रहे थे। ये जमीन 'खुद काश्त' जमीनें कहलाई। इसका परिणाम यह हुआ कि जमीदारों ने उनकी जमीनें जोतने वाले किसानों पर यह दवाब बनाया कि वे ज्यादा से ज्यादा जमीन 'खुद काश्त' के अंतर्गत घोषित कर सकें जिससे जमीदार उनके मालिक बन सकें। इस प्रकार आजादी के बाद जो भूमिसुधार लागू हुए उसमें जिनके नाम जमीनें हुई उन्हें भूमिहर कहा गया। परन्तु वे किसान भूमि सुधार कानून लागू होने से पहले खेतों में केवल जुताई का काम किया करते थे, उन्हें उनकी जमीनों से हटा दिया गया और उनमें से ज्यादातर भूमिहर अथवा खेतिहर मजदूर बन कर रह गये। इससे किसानों में अफरा-तफरी मच गई। परन्तु कुछ किसान ऐसे भी थे जो जमीदारों की जमीन पर कब्ज़ा जमाये रहे और जब जमीन की सीलिंग हुई तब उन्होंने जमीदारों से उसे थोड़े से पैसे देकर अपने नाम करवा लिया इससे बहुत कम दरों पर इन किसानों को जमीनें मिल गई। इस प्रकार किसानों का एक नया वर्ग उत्पन्न हो गया जिसने खेती करना अपना व्यवसाय बना लिया (Khusra, 1975 : 186)।

इस प्रकार आजादी के बाद जो भूमि सुधार लागू किये गये वे किसानों के साथ न्याय नहीं कर सके और किसानों का ऐसा वर्ग पैदा नहीं हो सका जो सामाजिक तथा आर्थिक रूप से समान होता। इसके साथ ही किसानों से कर वसूल करने का जमीदारों का अधिकार समाप्त हो गया। ज्यादातर जमीदारों के पास जमीनें ही नहीं बचीं और जो बची वो बहुत कम थी। परिणामतः समाज में उनकी आर्थिक, राजनैतिक तथा सामाजिक उच्चता समाप्त हो गई। अब किसानों पर उनका कोई अधिकार नहीं रहा। उनमें से कुछ तो अपनी बची हुई जमीनों को सम्हालने सुधारने में लग गये और मन लगाकर उन पर खेती करने लगे। और कुछ बर्बाद हुए। जो जमीदार खेती करते रहे उन्होंने आधुनिकतम खेती करने के तरीके अपनाये और अच्छी पैदावार लेते हुए बड़े और सम्पन्न किसान बन गये। जिन किसानों और जमीदारों ने उन दिनों ने खेती को अपना व्यवसाय बनाया उन्होंने एक तरफ खेती के व्यवस्थित तरीके अपनाये और अधिक पैदावार प्राप्त की तथा दूसरी ओर कम कीमत पर उन लोगों से जमीनें खरीद ली जिन्हें खेती के काम में कोई खास रुचि नहीं थी। बाद में जब सरकार द्वारा हरित क्रांति योजना के अंतर्गत किसानों की मदद की तब मन से खेती करने वाले इन सम्पन्न किसानों को बहुत लाभ हुआ। इस प्रकार प्रगतिशील व संपन्न किसानों का एक नया वर्ग भारतीय समाज में पैदा हो गया जो खेती के नये-नये तरीके सीखता था, प्रशिक्षण प्राप्त करता था और अपनी पैदावार बढ़ाता जाता था। इन किसानों के लिए खेती

एक व्यवसाय बन गई। वे इस तरह की खेती में निवेश करने लगे जिनकी फसलों के उत्पादन ऊंची कीमत पर बिकते थे। यह फसलें नकदी फसलें कहलाईं। ऐसे किसान उच्च कोटि के बीज तथा उर्वरकों का इस्तेमाल करते थे।

5.5.2 किसानों की परिसम्पत्तियां

अंग्रेजी सरकार द्वारा लागू किये गये भूमि व्यवस्थाओं में एक व्यवस्था का नाम था 'रैयतवाड़ी बन्दोवस्त'। यह व्यवस्था मद्रास तथा मुम्बई प्रैजीडैंसी में 19वीं शताब्दी में लागू की गई थीं इस व्यवस्था के अंतर्गत जिस जमीन पर किसान खेती कर रहे थे उस का स्वामित्व उसे ही दे दिया गया। इसके बदले में खेती करने वाले किसानों को सरकार को कर देना पड़ता था। यद्यपि यह बन्दोवस्त स्थायी नहीं था और लगभग 20 या 30 वर्ष बाद इसे बदला दिया गया।

इसके बाद किसानों का भूमि पर स्वामित्व जारी नहीं रहा। खेती करने वाले किसानों को उन राज्य सरकारों के सीधे अधीन कर दिया गया जिनमें वे किसान आते थे। राज्यों ने जमींदारों का दवाब देने वाली भूमिकायें समाप्त कर दीं और नये बन्दोवस्त के अन्तर्गत किसानों का एक ऐसा वर्ग पैदा हो गया जिसके लिये जमीन एक सम्पत्ति थी। लेकिन इस जमीन पर इन किसानों को इतनी ऊंची दर पर लगान देना पड़ा कि छोटे-छोटे किसान बुरी तरह कर्ज में दब गये सूदखोरों से ऊंची दर पर पैसा लेकर सरकार को लगान देने पर विवश किये जाने के कारण वे सब कर्ज और गरीबी के गर्त में डूब गये। अब जो किसान खेती के स्वामी थे उनमें आपस में मतभेद और असमानता की स्थिति पैदा होती गई। कुछ किसान कर्ज में दबे किसानों के खेतों पर कब्जा जमाते चले गये और उनका सामाजिक और आर्थिक कद बढ़ता चला गया। लेकिन बहुत बड़ी संख्या में छोटे किसान इनके शोषण के शिकार हुए और उनके जीवन तर्क बन गये। उनमें से ज्यादातर या तो बड़े किसानों के खेतों में हल चलाकर अपना गुजारा करने लगे अथवा खेतीहर मजदूर बन गये। इस व्यवस्था के कारण बड़ी संख्या में जो सही अर्थों में जमीनों के मालिक थे वे सूदखोर साहूकारों तथा व्यापारियों के हाथों अपनी जमीनें बेचने पर विवश हुए। हां ! बहुत थोड़े किसान सम्पन्न कृषकों के रूप में उदय हुए।

इस प्रकार आजादी से पहले ब्रिटिश हुकूमत द्वारा लागू किये गये भूमि बन्दोवस्तों तथा आजादी के बाद स्वाधीन भारत सरकार द्वारा लागू किये गये भूमि सुधार कानूनों के परिणामस्वरूप भारत में किसानों के तीन वर्ग उत्पन्न हो गये -

i) **अमीर या सम्पन्न किसान** – ये वे किसान थे जिन्होंने बड़ी भू सम्पत्तियों पर स्वामित्व हासिल कर लिया था। इन लोगों ने स्वयं अपने हाथ से खेती नहीं की परन्तु कृषि मजदूरों से नई तकनीकों का उपयोग करते हुए व्यवस्थित ढंग से खेती करवाई। इसका नतीजा यह हुआ कि उन्हें फसलों से बड़ी आमदनी होने लगी और वे पूंजीपति बन गये।

ii) **मध्यम वर्गीय किसान** – इस वर्ग में वे किसान आते हैं जो अपेक्षाकृत कम जमीनों पर स्वामित्व हासिल कर पाये। उन्होंने अपने खेतों में स्वयं हल चलाये और अपने परिवारों के सदस्यों की मदद से खेतों से इतनी पैदावार लेने में सफल रहे जिसमें उनका तथा उनके परिवारजनों का गुजारा हो सकता था।

iii) **गरीब किसान** – इस श्रेणी में वे किसान आते हैं जिनके पास इतनी कम जमीन थी कि उसकी पैदावार से वे अपने परिवार का गुजारा नहीं कर सकते थे। उन्हें अपना पेट भरने के लिये कृषि मजदूर की तरह दूसरों के खेतों में काम करना पड़ा। भारत

में इस वर्ग में आने वाले किसानों की संख्या बहुत अधिक है। खेतों पर मालिकाना हक रखने वाले किसानों के द्वारा भारत में इस वर्ग में आने वाले किसानों की संख्या बहुत अधिक है।

खेतों पर मालिकाना हक रखने वाले किसानों के द्वारा भारत में खासकर पंजाब, हरियाणा, पश्चिमी उत्तर प्रदेश, कर्नाटक और बिहार में खेती बाड़ी के क्षेत्र में बड़े परिवर्तन आये। इन परिवर्तनों को हरित क्रांति नाम दिया जाता है। हरित क्रांति ने समाज को बदलने में बड़ी भूमिका अदा की।

हरित क्रांति : आजादी के बाद भारत को खाद्य पदार्थों की कमी का सामना करना पड़ा। बड़ी संख्या में लोग अधपेट अथवा खाली पेट रहने पर विवश हुए। खाद्यान्न की कमी को पूरा करने के लिये तथा कृषि उत्पादन के क्षेत्र में किसानों में जागृति लाने के लिये 60 के दशक में भारत सरकार ने हरित क्रांति योजना लागू की। इस योजना के अंतर्गत अधिक पैदावार लेने वाले कार्यक्रम लागू किये गये तथा सघन कृषि विकास योजनायें लागू की गई। जिन क्षेत्रों में पैदावार कम होती थी उन्हें पैदावार बढ़ाने के लिये चिन्हित किया गया तथा जिनमें अधिक पैदावार सम्भव थी वहां और अधिक उत्पादन के प्रयास किये गये। इन योजनाओं के अंतर्गत किसानों को उतम बीज उर्वरक तथा सुरक्षित कृषि हेतु कीटनाशक उपलब्ध कराये गये। देश में नहरों का जाल बिछाया गया तथा जमीन से पानी निकालने के लिये टयूब वैल तथा जल पम्प लगाये गये। इन योजनाओं के कारण देश में कृषि उत्पादन में तेजी से वृद्धि हुई। पंजाब, हरियाणा तथा पश्चिमी उत्तर प्रदेश के किसानों ने आगे बढ़कर इन योजनाओं का लाभ उठाया और उन्होंने रिकॉर्ड तोड़ कृषि उत्पादन करके दिखाया।

यद्यपि आरंभ में अच्छी पैदावार की योजनायें प्रयोग के तौर पर लागू की गई थीं। परन्तु जब इसके अच्छे परिणाम आये तो पूरे देश के किसानों ने हर तरह और हर वर्ग के किसानों ने इनमें रुचि लेना आरम्भ कर दिया। वे उत्तम खेती और अच्छी पैदावार के लिये प्रशिक्षण लेने लगे और देखते ही देखते नई तकनीक की खेती का दौर शुरू हो गया। किसान आगे बढ़कर ट्रैक्टरों का नये हलों का थ्रैशरों का इस्तेमाल करने लगे।

देश में हरित क्रांति सफल हुई। खाद्यान्न उत्पादन में देश आत्मनिर्भर हो गया और समाज में इससे भारी बदलाव आया। किसानों में अब तक जो असमानता बनी हुई थी उसमें और वृद्धि हो गई। उत्तम खेती पर कुछ किसानों का आधिपत्य हो गया जो संसाधनों की कभी और गरीबी के कारण उत्पादन के नये साधनों को नहीं अपना पाये वे और गरीब हो गये। अंतिम परिणाम यह हुआ कि बड़ी संख्या में कृषि मजदूरी करने वाले भूमिहर किसान बड़े किसानों की खेती पर निर्भर होकर रह गये।

आज स्थिति यह है कि संपन्न किसान न केवल छोटे किसानों कृषि मजदूरों तथा कामगारों के लिये अन्नदाता बने हुए हैं अपितु वे देश के नेतृत्व में भी भागीदारी कर रहे हैं। उन्होंने बड़े-बड़ें संगठन बना रखे हैं। जैसे अखिल भारतीय किसान सभा, भारतीय किसान यूनियन, काश्तकारी संगठन आदि। ऐसे कुछ संगठनों का उदय तो ब्रिटिश शासन काल में ही हो गया था जैसे बंगाल में बंगाल जमीदार एसोसियेशन, बिहार में बिहार जमीदार एसोसियेशन तथा उड़ीसा में उड़ीसा जमीदार एसोसियेशन। किसानों के इन संगठनों ने भारत के स्वाधीनता संग्रामों में भी विशेष योगदान दिया। भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस द्वारा चलाये गये। राष्ट्रीय आंदोलन में इन संगठनों की भारी भूमिका रही।

आजादी के बाद अब जो किसानों के संगठन भारत में मौजूद हैं उनमें राष्ट्रीय स्तर पर किसान शामिल हैं। छोटे, बड़े और मझोले किसान प्रायः इनके सदस्य हैं। इन संगठनों का नेतृत्व अधिकतर संपन्न किसानों के हाथों में रहता है।

5.5.3 जोतदार

जब ब्रिटिश हुकूमत ने जमींदारी बंदोबस्त लागू किया तो जमीनों के मालिक किसान जमीनों से बेदखल हो गये और वे अपनी ही जमीनों पर जमींदारों के तहत मात्र जोतदारों से ब्रिटिश सरकार की व्यवस्था के तहत कर वसूलने लगे। जो जोतदार भारी कर चुकाने में असमर्थ रहे, उन्हें जमीनों में खेती करने से हटा दिया गया। उनका स्थान उन लोगों ने ले लिया जो प्रायः किसान नहीं थे, परन्तु भारी कर देने को तैयार थे। इसी तरह की व्यवस्था जागीरदारों के क्षेत्रों में लागू की गई।

इस प्रकार जमींदारी क्षेत्र में ब्रिटिश शासन काल में दो तरह के जोतेदार बन गये। एक वे जोतदार जो जमींदारों के अधीन जमींदारों के लिए खेती करते थे, दूसरे वे जो लीज़ पर जमीन ले लेने वाले लोगों के अधीन उनके लिए खेती करते थे। लीज़ पर जमीन लेकर खेती करवाने वालों के खेतों में जो जोतदार काम करते थे, वे एक तरह से उपजोतदार बन गये। बंगाल में इन उपजोतदारी के अधीन भी खेतों में काम करने के लिए विभिन्न श्रेणियों के लोग तैयार हो गये। इस परम्परा में स्व-जोतदार या निचले स्तर के जोतदार बटाईदार कहलाए। इस प्रकार जोतदार के नीचे जोतदार बनने वाली व्यवस्था को उप-जोतदारी अथवा अधीनस्थ किरायेदारी नाम दिया गया।

इस तरह जोतदारों की संख्या तथा श्रेणियों में वृद्धि केवल जमींदारों के क्षेत्र तक ही सीमित नहीं रहते, रैयतबाड़ी बंदोबस्त वाले क्षेत्रों में भी जहाँ खेती करने वाले किसान जमीनों के मालिक घोषित कर दिये गये थे, यह प्रथा प्रचलित हो गई, कर न चुका पाने के कारण जिन किसानों की जमीनें साहूकारों के कब्जे में चली गई थी, उन जमीनों को जोतने तथा उनमें फसले उगाने का काम भी किराये पर खेती करने वाले जोतदारों ने किया। बीच-बीच में ऐसे कानून लागू होते रहते थे जो जोतदारों की आय इस तरह खेती करते रहने में बनाये रखते थे। जिन जोतदारों की जेब में पैसा थे, वे अपने आपको सुरक्षित महसूस करते थे, जो गरीब थे वे असुरक्षित महसूस करते थे।

जब देश आजाद हुआ, उस समय देश में अनेक प्रकार व हैसियत के जोतदार मौजूद थे उन्हें जोतदार, उप-जोतदार तथा सह जोतदार या बटाईदार नाम दिये जा चुके थे। उप जोतदारों को जमीन से बेदखल किया जा सकता था। सहजोतदार केवल जमींदारों की दया पर पल रहे थे। वे खेतों में फसल उगाते थे और पैदावार का आधा हिस्सा ले लिया करते थे।

जोतदारी संशोधन

जोतदारी कानून में सुधार करना भूमि संबंधी कानूनों को लागू करने के लिये बहुत आवश्यक हो गया था। इसके अंतर्गत दूसरों की जमीन पर खेती करने वाले व्यक्ति को जमीन के मालिक को किराये के रूप में कितनी रकम देनी होगी और वह जमीन को कितनी अवधि तक अपने पास रख सकता है तथा जमीन पर मालिकाना हक उसे किन शर्तों अथवा हालात में दिया जा सकता है यह सब तय करने के लिये जोतदारी संशोधन कानून बनाया गया। यद्यपि यह कानून ज्यादा सफल नहीं हुआ क्योंकि इसमें बहुत सारी खामियां थी और उसे लागू करने में बहुत सारी बाधायें थी। एक बात और हुई कि इस कानून में संशोधन का फायदा ज्यादातर वे लोग उठा गये जो पैसे वाले थे और जिनके रसूक थे। जमीदारों की उन जमीनों पर इन जोतदारों ने मालिकाना हक हासिल कर लिये जो जमीदारों की निजी जोत में शामिल नही थी। इन जमीनों को खुदकाश्त जमीनों की श्रेणी से बाहर रखा गया था। ऐसे उपजोतदार भी काफी हद तक जमीनों पर मालिकाना हक प्राप्त करने में तथा जमीनों पर कब्जा करने में सफल हो गये।

अर्थात जोतधारी कानून में सुधार का सारा फायदा प्रभावशाली और संपन्न जोतदार तथा उपजोतदार उठा गये और वे जमीनों के मालिक बन गये। इस संशोधन से बटाईदारों को कोई फायदा नहीं हुआ।

उन किसानों की इसके बाद एक बार फिर भूमि सुधार का दौर चला। इसके अंतर्गत जमीने सील कर दी गई जिन्होंने एक सीमा से ज्यादा जमीनों पर कब्जा कर रखा था। जमीन को पैदावार के लिये उठाने की अवधि में भी घटोतरी की गई। बटाईदारी प्रथा इसके बाद भी जारी रही। आज भी गांवों में बटाईदारी प्रथा जारी है। यद्यपि जो लोग बटाई पर जमीन लेते हैं उनके कोई संगठन नहीं होते और ना ही उनका राजनैतिक सत्ता में कोई दखल होता है। वे कमजोर आर्थिक स्थिति वाले लोग होते हैं जो भारत के कृषि उत्पादन कार्यों में विशेष भूमिका निभाते हैं।

5.5.4 कृषि मजदूर

भारतीय गांवों में कृषि उत्पादन के क्षेत्रों में खेतों में काम करने वाला एक वर्ग और है जो दूसरों के खेतों में काम करके अपनी आजीविका चलाता है। कर्ज के बोझ से दब जाने के कारण बहुत से छोटे किसानों के अपनी जमीनें खोनी पड़ीं और वे कृषि मजदूर बनने पर विवश हुए। गांवों के पुनर्वास के कारण ही बड़ी संख्या में लोग भूमिहीन हुए और उन्हें दूसरों के खेतों में काम करके गुजारा करना पड़ा। भारत की पारम्परिक अर्थव्यवस्था में हस्तकला में माहिर अनेक कारीगर हुआ करते थे। ब्रिटिश शासन काल में उनके धंधे नष्ट हो गये और वे कृषि मजूदर बनने पर विवश हुए। गांवों में आज भी बड़ी संख्या में ऐसे लोग निवास करते हैं जिन्हें अपनी रोजी रोटी चलाने के लिये दूसरों के खेतों में मजदूरी करने के अलावा कोई और चारा नहीं है। ये कृषि मजदूर तीन प्रकार के होते हैं। पहली श्रेणी में वे कृषि मजदूर आते हैं जिनके पास अपने खेत तो होते हैं परन्तु वे इतने कम होते हैं कि उनकी पैदावार से परिवार का गुजारा नहीं चलाया जा सकता, अतः परिवार चलाने के लिये उन्हें कृषि मजदूरी भी करनी पड़ती है। दूसरी श्रेणी में वे कृषि मजदूर आते हैं जिनके पास कोई जमीन नहीं होती वे अपनी आजीविका चलाने के लिये कृषि मजदूरी पर निर्भर करते हैं। ऐसे मजदूरों का बड़े किसानों द्वारा काफी शोषण किया जाता है। उनकी पगार निश्चित नहीं होती आमदनी इतनी कम होती है कि वे घर का खर्च नहीं उठा पाते और कर्ज बन्द हो जाते हैं उन्हें भरपेट खाना भी नहीं मिल पाता। अब सरकारों ने ऐसे नियम लागू किये हैं जिनके तहत उन्हें काम के बदले समुचित पारिश्रम मिल सके।

तीसरे प्रकार के कृषि मजदूरों में वे मजदूर आते हैं जिन्हें अपने परिवार चलाने के लिये बड़े किसानों के पास स्वयं को बन्धक रखना पड़ता है और वे बन्धुआ मजदूर बन जाते हैं। भारत के अनेक प्रान्तों में गरीबी की रेखा से नीचे जीने वाले ऐसे असंगठित कामगार पाये जाते हैं जो बंधुआ मजदूरी करने पर विवश हो जाते हैं। गुजरात में डबलास तथा हाली जातियों के लोग तमिलनाडु में पैडियाल्स इस श्रेणी में आते हैं।

स्वाधीनता के बाद जो भूमि सुधार कानून लागू किये गये उन्होंने भी भारतीय कृषि मजदूरों की दिशा सुधारने में कोई भूमिका नहीं निभाई। सरकार ने सहकारिता के आधार पर उन्हें बंजर जमीन पर बसाने की योजना अवश्य बनाई है। 1972 में बंधक मजदूरी प्रथा भारत में कानून समाप्त कर दी गई। अनेक स्वचालित संस्थायें तथा सामाजिक संगठन देश भर में बंधुआ मजदूरी प्रथा को जड़ से उखाड़ फेंकने में लगे हुए हैं फिर भी बाल मजदूरी और बंधुआ मजदूरी अत्यधिक गरीब परिवारों की ऐसी मजबूरी है कि वे उस से निकल नहीं पा रहे। जिन्दा रहने के लिये जब कोई उपाय नहीं बचता तो लोग किसी भी शर्त पर काम करने को तैयार हो जाते हैं। भूमि सुधार कानून तथा अन्य नई व्यवस्थायें लागू होने से कृषि

मजदूरों की संख्या और बढ़ी है। हरित क्रांति ने भी कृषि मजदूरों की संख्या में वृद्धि की है। हरित क्रांति योजना के कारण बड़े किसानों ने खेती के लिये बड़े-बड़े फार्म बनाये और उनसे अधिक उत्पादन लेने के लिये अनेक जोतदारों को निलम्बित कर दिया इससे कृषि मजदूरों की संख्या और बढ़ गई। जनसंख्या वृद्धि के कारण भी कृषि मजदूरों की संख्या बढ़ी है और देश में ऐसी कोई व्यवस्था नहीं है कि खेती के कामों पर निर्भर रहने वाले इन कृषि मजदूरों को कल-कारखानों में भेजा जा सके। ऐसी स्थिति में कृषि मजदूरों को गरीबी के चंगुल से मुक्त करना मुश्किल है। सरकार ने उनके हितों की रक्षा करने के लिये कुछ कदम उठाये हैं। बंधुआ मजदूरी कानून लागू करके वेतन सुनिश्चित करके तथा रोजगार प्रदान करने वाली योजनायें प्रदान करके सरकार कृषि मजदूरों की आर्थिक दशा सुधारने का प्रयास कर रही हैं।

योजनाओं का लाभ अंतिम आदमी तक पहुंचने में बहुत वक्त लगता है। यही वजह है कि सरकारी प्रयासों के बावजूद अभी तक गरीबी और पिछड़ेपन का अभिशाप झेलने के लिये ये लोग विवश हैं।

5.5.5 कारीगर

भारतीय ग्रामीण समाज में अनेक प्रकार के कामों में दक्ष हस्तकला के कारीगर बड़ी संख्या में पहले से ही निवास करते आये हैं। इनमें बढ़ई, लोहार, कुम्हार, तेली, नाई आदि का भारत को सामाजिक व्यवस्था में बड़ा योगदान रहा है। इसके अलावा गांवों में जजमानी प्रथा भी थी। जजमानी करने वाले अनेक लोग गांव-गांव में पाये जाते थे। ब्रिटिश शासनकाल से पहले से सब गांव वालों के सहयोग पर जीवन यापन करते थे। अंग्रेजी शासनकाल में ये कारीगर लगभग बेरोजगार हो गये। छोटे-छोटे घरेलू उद्योग नष्ट हो गये क्योंकि वे ब्रिटेन के उद्योगों का मुकाबला नहीं कर सकते थे। किन्हीं दिनों भारत का हथकरघा उद्योग दुनिया भर में प्रसिद्ध था। भारत के हाथ के कारीगरों का माल विदेशों तक में जाता था। ढाका का मलमल अपनी गुणवन्ता और सुन्दरता के लिये विश्व भर में प्रसिद्ध था। अंग्रेज भारत के खेतों में पैदा होने वाला कच्चा माल जूट, सन, कपास ब्रिटेन ले गये और वहां के कारखानों में तैयार किये गये कपड़े भारत में बिकने लगे। इससे भारत के छोटे स्तर के कपड़ा उद्योग भारी गुणवत्ता के बावजूद बन्द हो गये। इसका नतीजा यह हुआ कि इनमें काम करने वाले बड़े-बड़े कुशल कारीगर बेरोजगार हो गये और वे कृषि मजदूर बनने पर विवश हुए।

अंग्रेजी शासनकाल में गांवों की जो छोटी-छोटी औद्योगिक इकाइयाँ नष्ट हुई थी, उससे सारे गांव उद्योग व उद्यम रहित हो गये और बेकारों व बेरोजगारों के समूह यहाँ-वहाँ भटकने पर विवश हुये।

आजादी के बाद भारत सरकार ने नये कुटीर उद्योग गांव-गांव खुलवाये। इन्हें चलाने के लिए बेरोजगार तथा जानकार युवाओं को बैंकों से ऋण दिये गये। इन औद्योगिक इकाइयों में तैयार माल की बिक्री हेतु शहर के बाजारों तक पहुँचाने के लिए सड़कें बनाई गई, यातायात के साधन उपलब्ध कराये गये।

गांवों में पाये जाने वाले ये कारीगर प्रतिभा तथा अनुभव की दृष्टि से अनेक तरह के हैं। इनमें से कुछ अच्छे पढ़े लिखे तथा प्रशिक्षत है, कुछ कम पढ़े लिखे तथा औसत दर्जे के हैं, तथा कुछ केवल किसी दक्ष कारीगर के साथ काम करने के उपयोगी होते हैं। इन सबकों एक ही श्रेणी में नहीं रखा जा सकता।

ये सब असंगठित हैं तथा काम की तलाश में रहते हैं। दक्षिण भारत के अलावा पूरे देश में विभिन्न भागों में बड़ी संख्या में मौजूद हैं। इन्हें संगठित करके इनकी प्रतिभाओं को निखारना और इन्हें उत्पादन-जगत की मुख्यधारा में खड़ा करना चुनौती पूर्ण कार्य है। भूस्वामियों, जोतदारों तथा कारीगरों के सामाजिक वर्गों का चित्रण संलग्न चित्र में दिया गया है (चित्र 5.1)

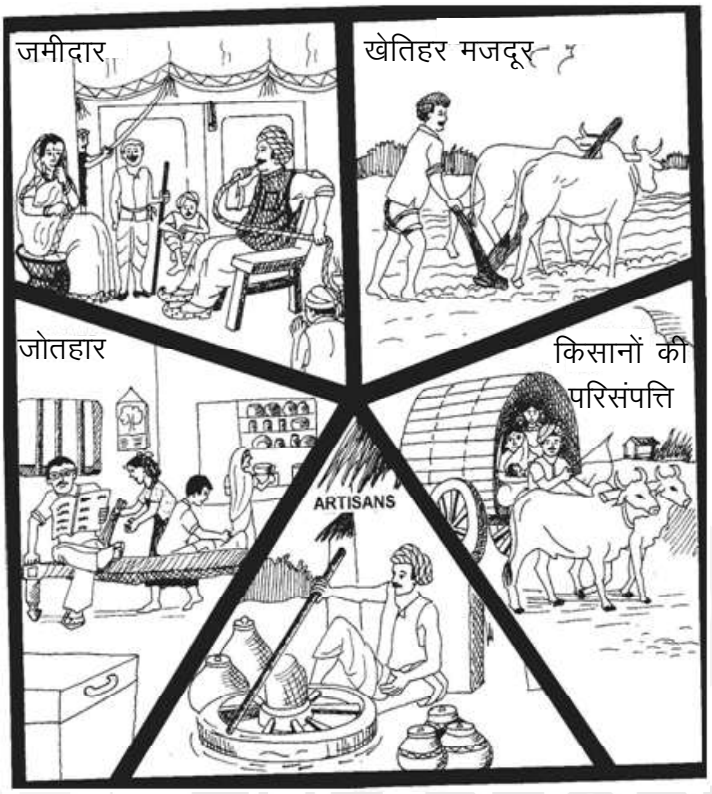

बोध प्रश्न 2

नोट :1) अपने उत्तरों के लिए नीचे दिए गए स्थान का प्रयोग कीजिए।

2) इकाई के अंत में दिए गए उत्तरों से अपने उत्तर मिलाइए।

1) ब्रिटिश शासनकाल में लागू किये गये रैयतवाड़ी बंदोबस्त की व्याख्या कीजिए। केवल दो पंक्तियों में उत्तर दीजिए।

.....

.....

.....

.....

2) ब्रिटिश शासनकाल के भूमि के स्थायी बंदोबस्त का वर्णन करो। केवल तीन पंक्तियों में उत्तर दीजिए।

.....

.....

.....

.....

.....

3) संपन्न किसानों तथा मध्यवर्गीय किसानों में क्या अंतर है। केवल छः पंक्तियों में उत्तर दीजिए।

.....

.....

.....

.....

.....

5.6 नगरीय भारत में सामाजिक वर्ग

नगरीय क्षेत्रों में सामाजिक वर्ग कई प्रकार के होते हैं :

1) पूंजीपति वर्ग (वाणिज्यिक व औद्योगिक)
2) निगमित क्षेत्र
3) व्यावसायिक वर्ग
4) छोटे व्यापारी तथा दुकानदार
5) नौकरी पेशा वर्ग

5.6.1 वाणिज्यिक व औद्योगिक वर्ग

ब्रिटिश शासन-काल में भारत में उत्पादन कार्य केवल बाजार के लिए किया जाने लगा। परिणामतः देश के अंदर बाजार बढ़ने लगा तथा व्यापारी वर्ग उसी में मुनाफा कमाने में लग गया। साथ ही साथ भारत विश्व बाजार से जुड़ने के लिए प्रयास करने लगा। इससे

व्यापारियों का एक ऐसा वर्ग भारत में पैदा हो गया जो आयात-निर्यात में लगा और मुनाफा कमाने लगा। इस प्रकार भारत में व्यापारियों का एक मध्यम वर्ग पैदा हो गया।

रेलवे के बिस्तार होने से यातायात के साधनों की उपलब्धियों व्यापारियों को इतना धन अर्जित करवाने में सहायक हुई कि वे बड़े पैमाने पर उद्योगों में निवेश करने की स्थिति में आ गये।

अंग्रेजों की तरह भारत में उद्योगपतियों ने भी कपास, जूट, खदान आदि क्षेत्रों में भारी विनाश किये। इस प्रकार अब भारत में मिल-मालिक, खदान-मालिक जैसे बड़े उद्योगपति पैदा हो गये। उन्होंने अपनी औद्योगिक गतिविधियों का विस्तार जारी रखा। आर्थिक तथा सामाजिक रूप से यह वर्ग भारत का सबसे सम्पन्न वर्ग बन गया।

यद्यपि भारतीय उद्योगपति, अब भी ब्रिटिश उद्योगपतियों की तुलना में बहुत पीछे थे, क्योंकि जब तक भारत पर अंग्रेजी राज रहा तब तक वही ऐसी नीतियां बनाई जाती रही कि भारतीय एक सीमा से आगे न जा सकें।

अंग्रेजों के साथ टकराव की स्थिति बनने लगी और अंग्रेजी शासन के दबावों से बचने के लिए भारतीय वाणिज्यक व औद्योगिक वर्ग ने अपने स्वतंत्र संगठनों का गठन कर लिया। व्यापारियों व उद्योगपतियों का यह वर्ग अब ब्रिटिश शासन को उखाड़ फेंकने के लिए भारत के स्वाधीनता आंदोलन से जुड़ गया। अब व्यावसायों व उद्योगपतियों का यह लक्ष्य बन गया कि भारत से अंग्रेजी शासन को उखाड़ फेंकने के साथ-साथ भारत में एक औद्योगिक क्रांति लायेंगे। देश के समग्र उत्पादन में भी यह वर्ग महत्वपूर्ण भूमिका निभाने लगा। भारत में मिश्रित अर्थव्यवस्था का रास्ता अपनाया गया। देश की औद्योगिक व वित्तीय नीतियों के निर्माता में इस वर्ग का दखल बढ़ गया।

देश में मिश्रित अर्थव्यवस्था के तहत भारतीय आर्थिक क्षेत्र में दो वर्ग पैदा हुए एक सार्वजनिक क्षेत्र दूसरा निजी क्षेत्र। कृषि उद्योग तथा व्यापार निजी क्षेत्रों के हिस्से बने। आधारभूत संसाधनों के उत्पादन तथा भारी उद्योगों की स्थापना का दायित्व सरकार ने अपने हाथ में लिया। इस नीति के कारण देश में ऐसी औद्योगिक इकाइयों की स्थापना हुई जिनके संचालन का दायित्व उद्योगपतियों के हाथों में चला गया। इसके परिणामस्वरूप वाणिज्यिक वर्ग का विकास हुआ। वाणिज्यिक तथा व्यापारिक वर्ग आजादी से पहले भारत में जड़ें जमा चुका था। इन उद्योगों में केवल वस्त्र उद्योग, जूट व खदान उद्योग तथा बागान ही शामिल थे, इसके अलावा इस्पात उद्योग, कागज बनाने के कारखाने आदि में भी भारत के उद्योगपतियों ने रुचि ली। तमाम तरह के व्यवधानों के बावजूद भारत में ये उद्योग फलते फूलते रहे। इन उद्योगों के कारण देश में बहुआयामी आर्थिक विकास तो हुआ परन्तु देश में आर्थिक असमानता बढ़ती चली गई। औद्योगिक वर्गों में भी यह असमानता बढ़ी और नतीजा यह हुआ कि भारत के तमाम उद्योग धन्धे सिमट कर टाटा, बिड़ला, डालमिया जैसे कुछ उद्योगपतियों के हाथों में सिमट कर रह गये।

5.6.2 निगमित क्षेत्र

सरकार के अधीन चलाये जाने वाले संगठनों को सार्वजनिक क्षेत्र के संगठन कहा जाता है। जो क्षेत्र संगठन सार्वजनिक क्षेत्रों में नहीं आते उन्हें निजी क्षेत्र कहा जाता है। वे निकाय और संगठन व्यक्तियों द्वारा निजी अधिकार के तहत चलाये जाते हैं वे सब निजी क्षेत्र के अंतर्गत आते हैं। निजी क्षेत्र के सभी निकायों को दो श्रेणियों में बांटा जा सकता है।

1) वे निकाय जो केवल एक व्यक्ति द्वारा चलाये जाते हैं अर्थात् जिनका स्वामित्व एक व्यक्ति के हाथों में होता है।

2) वे निकाय जिनका स्वामित्व सामूहिक रूप से कुछ लोगों को प्राप्त होता है। सामूहिक स्वामित्व वाले निकायों को चार श्रेणियों में विभाजित किया जाता है।

एक – साझेदारी वाले निकाय, दो – संयुक्त हिन्दु परिवार के स्वामित्व वाले निकाय, तीन – स्टॉक कम्पनियाँ, चार – सहकारी निकाय। इनमें सबसे महत्वपूर्ण संयुक्त स्टॉक कम्पनियां हैं। इन्हें निगमित क्षेत्र अथवा कम्पनी क्षेत्र कहा जाता है जो संयुक्त स्टॉक कम्पनियां सार्वजनिक क्षेत्र के अंतर्गत नहीं आती वे निजी निगमित क्षेत्र कहलाती हैं। भारत का निगमित क्षेत्र बहुत विशाल है तथा विविधताओं से भरा है। प्राइवेट निगमित क्षेत्र कर भूमिका और उसका महत्व इस बात से आंका जाता है कि राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था में इसका कितना योगदान रहता है। निजी निगमित क्षेत्र का योगदान 1980 में कुल भारतीय अर्थव्यवस्था का 10 प्रतिशत था और 1990 के दशक में यह बढ़कर 19 प्रतिशत हो गया। इससे पता लगता है कि भारतीय अर्थव्यवस्था में निजी निगमित क्षेत्र की भूमिका कितनी महत्वपूर्ण है। और भी अनेक प्रकार से इस क्षेत्र का महत्व देश में देखा जा सकता है। 'दलाल स्ट्रीट इन्वैस्टमेंट जनरल' के अनुसार 20वीं सदी के अंतिम दशक में दो हजार कम्पनियां विशेष रूप से उन्नति कर चुकी थीं। 1991 में नई आर्थिक नीति लागू होने के बाद देश में निजीकरण का दौर तेजी से आरंभ हुआ और भारतीय अर्थव्यवस्था के विकास में नीतियां उदार हुई हैं। तब से निजी निगमित क्षेत्र ने इतना विकास किया है कि वो भारत के आर्थिक क्षेत्रों में अपना महत्वपूर्ण स्थान बना चुके हैं।

5.6.3 व्यवसायिक वर्ग

भारत पर शासन सफलतापूर्वक करते रहने तथा उभरते हुये नये व्यवसायी वर्ग की शक्तियों को इस्तेमाल करने की दृष्टि से ब्रिटिश हुकूमत ने नई शिक्षा नीति, अंग्रेजी प्रणाली की शिक्षा पद्धति लागू करने का साहसपूर्ण कदम उठाया। भारतीय उपमहाद्वीप में सफलतापूर्वक शासन करने तथा जनता का विश्वास जीतने के लिये जनता की भागीदारी जरूरी थीं। बीसवीं शताब्दी के आरम्भ होने से पहले उन्नीसवीं शताब्दी में ही अंग्रेजों को यह अहसास हो गया था कि भारत में युवाओं को नई तकनीक की जानकारी की जानकारी देने, चिकित्सा के क्षेत्र में कार्य करने के लिये उन्हें तैयार करने, तथा प्रशासनिक सेवाओं को सफलतापूर्वक चलाने के लिये योजना बद्ध ढंग से प्रयास करने होंगे। इस योजना के अंतर्गत भारत में आधुनिक शिक्षण संस्थान, स्कूल और कॉलेज खोले गये। जिनमें कानून, वाणिज्य, विज्ञान, सामाजिक संदर्भ तथा आर्थिक मामलों की शिक्षा प्रदान की जाने लगी। देश में व्यावसायिक वर्ग को विकसित करने की आवश्यकता तेजी से महसूस की जा रही थी। अतः अनेक प्रकार के शिक्षण संस्थानों में आधुनिक उद्योग कृषि, वाणिज्य, वित्तीय मामले तथा प्रैस संबंधी शिक्षण एवं प्रशिक्षण दिये जाने लगे। देश भर में वकील, डॉक्टर, शिक्षक, व्यवस्थापक तैयार करने के लिये युवाओं का इन पाठ्यक्रमों में प्रवेश दिये गये। इन्जीनियरों, औद्योगिक विशेषज्ञ, कृषि वैज्ञानिक तथा संजीदा किस्म के पत्रकारों की देश को बड़ी संख्या में जरूरत थी। इन सभी व्यवसायों से जुड़े लोगों ने राष्ट्रीय स्वाधीनता आंदोलन में अपना योगदान दिया था। देश में जितने भी प्रगतिशील आंदोलन हुए तथा जितनी भी कल्याणकारी तथा देश को समृद्ध बनाने वाली योजनायें लागू की गई उनके पीछे व्यावसायिक वर्ग की प्रतिभाओं का बड़ा हाथ था।

जब देश आजाद हुआ और स्वतंत्र भारत की अपनी सरकार बनी तो उसके सामने औद्योगिक तथा शहरी विकास दो बड़ी चुनौतियां थीं। बड़ी तेजी से देश में उद्योगों का विकास किया गया। व्यापार तथा वाणिज्य आवास निर्माण क्षेत्र यातायात सभी क्षेत्रों में तेजी से काम होने लगा। पूरे देश में प्रशासनिक कार्यों को चलाने के लिये बड़ी संख्या में

प्रशासनिक मामलों में दक्षता प्राप्त करने के लिए छात्रों को प्रशिक्षण देने हेतु प्रशिक्षण संस्थानों का संचालन किया गया। इन संस्थानों में प्रशिक्षण लेने के बाद युवाओं को रोजगार मिला तथा देश भर में कुछ ही दशकों में चिकित्सक, अधिवक्ता, न्यायविद, पत्रकार, प्रोफेसर, शिक्षक आदि तैयार हो गये और एक बहुत बड़ा व्यावसायिक वर्ग, विभिन्न व्यवसायों में अपनी सेवायें देने वाला वर्ग बड़ी जनसंख्या वाले दुनियां के सबसे बड़े लोकतंत्र भारत में उभर कर आया। इस वर्ग में शामिल विभिन्न प्रतिभाओं से युक्त व्यवसायी देश में अपनी अलग पहचान रखते हैं। शारीरिक काम करने वाले मजदूरों तथा कारीगरों से ऊपर सुशिक्षित और सुप्रशिक्षित यह वर्ग देश में अपना विशेष स्थान रखता है। लेकिन इस वर्ग में भी आर्थिक असमानता स्पष्ट देखने को मिलती है। यहां ऊंचे शुल्क पर काम करने वाले वकीलों से लेकर सामान्य शुल्क पर काम करने वाले वकील शामिल हैं। इसी प्रकार विभिन्न वेतनमानों पर काम करने वाले डॉक्टर, इंजीनियर तथा पत्रकार शामिल हैं। अपने काम में दक्षता और कार्य क्षमता के आधार पर पदोन्नति प्राप्त करना इस वर्ग के प्रतिभाशाली लोगों का चरित्र है इनकी जीवन शैलियां इनकी सोच व दृष्टिकोण भिन्न-भिन्न होते हैं। संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि विभिन्न प्रकार की प्रतिभाओं से संपन्न विभिन्न वेतनमानों पर काम करने वाले शिक्षित, प्रशिक्षित, व्यावसायिक कर्मियों का वह वर्ग भारत का सबसे ज्यादा व्यापक और उभरता हुआ मध्यम वर्ग है। जिसकी समाज में अपनी अलग पहचान एवं प्रतिष्ठा है।

5.6.4 छोटे व्यापारी, दुकानदार तथा असंगठित श्रमिक

शहरी क्षेत्रों में दो और ऐसे वर्गों का उदय हुआ जिन्होंने शहरों के विकास में भारी योगदान दिया। जैसे-जैसे आधुनिक शहर विकसित होते गये वैसे-वैसे दुकानें खुलती गईं और व्यापारी उनमें पहुंचते रहे। व्यापारियों का काम था कारखानों में बनने वाले उत्पादों को दुकानदारों तक पहुंचाना और दुकानदारों का काम था उन उत्पादों को ग्राहकों के हाथ बेचना। इस प्रकार व्यापारियों और दुकानदारों ने उत्पादन करने वाली इकाइयों और उनका उपयोग करने वाले उपभोक्ताओं के बीच कड़ी का काम किया। इस प्रकार व्यापारियों और दुकानदारों दोनों वर्गों के लोगों ने अपने-अपने हिस्से का मुनाफा कमाते हुए देश की अर्थव्यवस्था को आगे बढ़ाने का काम किया तथा देश के नागरिकों तक अपनी सेवायें पहुंचाई। अन्य वर्गों की तरह इस वर्ग ने भी आजादी के बाद तेजी से जबरदस्त विकास किया। जिस गति से आजादी के बाद नगरों का विस्तार हुआ उसी गति के साथ व्यापारियों और दुकानदारों का भी विकास हुआ। क्योंकि गांवों में रोजगारों का अभाव था अतः बड़ी संख्या में ग्रामीण का रोजगार की तलाश में नगरों में आने का सिलसिला जारी रहा। अब भी गांवों से बड़ी संख्या में लोग महानगरों तथा मध्यम दर्जे के शहरों में लगातार पलायन कर रहे हैं। जितने ज्यादा लोग शहरीकरण के कारण ग्रामीण आंचलों से शहरों में पहुंचते जा रहे हैं उतनी ही ज्यादा उनकी जरूरतों को पूरा करने के अवसर छोटे व्यापारियों और दुकानदारों को मिलते हैं। नगरों में रहने वाले एक बहुत बड़े वर्ग को नगरों में लगातार आ रही आबादी से रोजगार के अवसर उपलब्ध होते हैं। इसके अलावा नगरों में संगठित तथा असंगठित आर्थिक क्षेत्रों में भी रोजगार की संभावनायें बढ़ती रहती हैं। संगठित क्षेत्रों में रोजगार की संभावनायें तुलनात्मक रूप से कम हैं क्योंकि उनके लिये एक अच्छे स्तर की शिक्षा और प्रशिक्षण की जरूरत पड़ती है। यही कारण है कि गांवों से पलायन करके शहरों में आने वाले लोगों में केवल वे ही संगठित क्षेत्र में रोजगार प्राप्त कर पाते हैं जो सुशिक्षित होते हैं। अतः गांवों से आने वाले ज्यादातर लोग शहरों में उभरती छोटी-छोटी उत्पादन इकाइयों में छोटे उद्योगों में या फिर घरों में मजदूरी का काम करते हैं। उन्हें वेतन कम मिल पाता है तथा उनके रोजगारों में नियमित भी नहीं होती जबकि संगठित क्षेत्रों में रोजगार लेने वाले योग्य एवं प्रशिक्षण प्राप्त युवाओं को अच्छा वेतन मिलता है और उनके रोजगारों में सुरक्षा तथा अन्य संबंधित लाभों के मिलने का सिलसिला जारी रहता है।

1991 में आर्थिक उदारीकरण की नीतियां लागू होने के बाद कर्मचारियों को रोजगार से हटाने का सिलसिला बढ़ा है। जिसका परिणाम यह हुआ है कि बहुत से संगठित क्षेत्रों में काम करने वाले युवा जब वहां से हटा दिये जाते हैं तो उन्हें असंगठित क्षेत्रों में ही काम करके गुजारा करना पड़ता है। क्योंकि असंगठित क्षेत्रों पर बरोजगारों का दवाब बढ़ जाता है। अतः वहां कर्मचारियों और मजदूरों का शोषण होना स्वाभाविक है। एक प्रकार से संगठित क्षेत्रों में आर्थिक उदारीकरण की नीतियां लागू होने के बाद से असंगठित क्षेत्रों में काम करने वाले कर्मचारियों पर बहुत प्रभाव पड़ा है। असंगठित क्षेत्रों में काम करने वाले मजदूरों के वेतनमानों में कटौती हुई है और उन पर कामों का बोझ बढ़ा है। इसके अलावा छोटे व्यापारियों और दुकानदारों पर देश में बहुराष्ट्रीय कम्पनियों के आने तथा स्वदेशी निजी निगमित क्षेत्रों के प्रवेश से छोटे व्यापारियों और दुकानदारों के मुनाफा कमाने के अवसर कम हुए हैं और छोटे स्तर के उद्योग तथा दुकानें बड़े-बड़े मॉल खुल जाने से बन्द होने के कगार पर पहुंच गये हैं। जो लोग पहले छोटी-छोटी दुकानें जनरल स्टोर तथा लघुव्यापार केन्द्रों पर काम किया करते थे या हाथ के कारीगर और मत्स्य पालन आदि के कामों में जुटे थे उनका बहुत नुकसान हुआ है। असंगठित क्षेत्र में काम करने वाले लोगों में ज्यादातर लोग अनपढ़ या कम पढ़े-लिखे होते हैं। उन्हें काम करने के तरीके भी नहीं आते। इसलिये असंगठित क्षेत्रों के मजदूरों की दशा अच्छी नहीं है। उन्हें नियमित रोजगार नहीं मिल पाते और जिस वेतनमान और सुविधाओं के वे अधिकारी हैं वे सब भी उन्हें नहीं मिल पाते। असंगठित क्षेत्रों में काम करने वाले लोगों में बड़ी संख्या छोटे-छोटे दुकानदारों, पटरी पर माल बेचने वालों, ठेलीलगाने वालों तथा गलियों में और घर-घर आवाज लगाकर सामान बेचने वालों तथा घरों में साफ-सफाई से लेकर खाना बनाने के काम करने वालों कार धोने के काम करने, कपड़े प्रैस करने तथा घर-घर जाकर सब्जियां या दूध जैसी आवश्यक इस्तेमाल की चीजें पहुंचाने वाले लोगों की संख्या बहुत अधिक है। भारतीय नगरों में उपजाय असंगठित क्षेत्र अव्यवस्थित तथा असुरक्षित है। इसमें अपनी सेवाएं देने वाले लोग बस किसी तरह गुजारा कर ही रहे हैं।

सोचिये और करिये 2

अपने आस-पड़ोस में विभिन्न कार्यों में लगे लोगों को तलाशिये और उनसे बातचीत करके पता लगाइये कि वे किन हालात में काम करते हैं और फिर सुनिश्चित कीजिये कि वे समाज के किस वर्ग में आते हैं। आप जानते हैं कि भारतीय समाज में अनेक वर्गों के लोग निवास करते हैं इनमें प्रमुख वर्ग हैं - जमींदार (भूस्वामी), काश्ताकार, कारीगर, कृषि मजदूर, पूंजीपति, व्यवसायी, छोटे दुकानदार तथा छोटे व्यापारी अथवा नौकरपेशा।

1) आपके द्वारा किये गये वर्गों के विभाजन का आधार क्या है? अपने उत्तर के समर्थन में दो कारण बताइये।

2) दो पृष्ठों में इस पर एक लेख तैयार कीजिये और यदि संभव हो तो अपने अध्ययन केन्द्र में आने वाले अन्य छात्रों द्वारा तैयार किये गये लेखों से अपने लेख की तुलना कीजिये?

5.6.5 नौकर पेशावर्ग

नौकर पेशावर्ग का उदय ब्रिटिश शासन काल में ही हो चुका था। जब अंग्रेजों ने देश में रेलवे लाइनें बिछाई तो कल कारखाने भी खुलने लगे। बागान के क्षेत्रों में भी विकास कार्य होने लगे। खानों में खदान के कार्य भी शुरू हुए। यातायात के साधन बढ़े इन सब निकायों में काम करने के लिये कर्मचारियों और मजदूरों की जरूरत पड़ी और काम करने में रुचि रखने वाले लोगों को रोजगार मिलने लगा। नौकर पेशा लोगों में ग्रामीण क्षेत्रों से आने वाले

किसानों के परिवार जन, निजीकाम धंधों के बर्वाद होने से बेरोजगार हुए हाथ के कारीगर आदि शामिल हुए। आरंभ में काम पर लगने वाले लोगों को विषम परिस्थितियों में काम करना पड़ा। उन्हें आवश्यक सुविधायें उपलब्ध नहीं थीं। उनके रहन-सहन का स्तर सामान्य था। वेतन इतना कम मिलता था कि उसमें उनके परिवारजनों का गुजारा नहीं होता था, अतः उन्हें कर्ज लेकर काम चलाना पड़ता था। उनकी दशा सुधारने के लिये समय-समय पर तत्कालीन ब्रिटिश हुकूमत अनेक कानून लेकर आई जिनमें इण्डियन पोस्टर एक्ट, दवर्कमैन्स कम्पैन्सेशन एक्ट, द फैक्ट्री एक्ट, दमाइनर्स एक्ट आदि शामिल हैं। इन कानूनों से नौकर पेशा लोगों तथा मजदूरों को कुछ राहत अवश्य मिली परन्तु ये सारे कानून श्रमिकों के अधिकारों की रक्षा करने के लिये पर्याप्त नहीं थे। इससे कर्मचारियों और मजदूरों में असंतोष फैलने लगा। उन्होंने मिलकर कर्मचारी कल्याण संघ बनाली और भारत में नौकर पेशा लोगों ने इन यूनियनों के माध्यम से नौकर पेशा आंदोलन की शुरुआत की। जहां-जहां कर्मचारियों व मजदूरों को उचित वेतन नहीं मिलता था ये हड़ताल पर चले जाते थे। कारखानों में काम न करने की घोषणा करके बाहर निकल आते थे और कई बार कारखानों के मालिक कारखानों में ताला लगा देते थे और उन्हें चेतावनी देते थे कि यदि वे काम पर नहीं लौटे तो उन्हें काम से निकाल दिया जायेगा और उनके स्थान पर नये लोगों की भर्ती कर ली जायेगी। इस प्रकार कर्मचारियों और मालिकों के बीच संघर्ष छिड़ जाता था। यदि कारखाने अधिक दिनों तक बन्द रहते तो मजदूरों के घरों में चूल्हे जलने बन्द हो जाते थे, वे भूखे मरने लगते थे, ऐसे में मजदूर यूनियन के नेता बीच-बचाव करके फिर से ताले खुलवाते थे और कारखानों में फिर से काम शुरू हो जाता था।

देश के विभिन्न भागों में विभिन्न प्रकार के कार्यालयों तथा कारखानों में काम करने वाले मालिकों तथा व्यवस्थापकों के साथ निरन्तर संघर्ष करते रहे और उम्मीद करते रहे कि उनकी दशा में सुधार होगा। लगातार प्रयासों के कारण कुछ सुधार हुए। उनके वेतन सुनिश्चित किये गये, कार्य स्थलों की दशाओं में सुधार हुए और भारत का नौकर पेशा वर्ग थोड़ी-थोड़ी राहत महसूस करने लगा।

इसी बीच देश आजाद हो गया और जहां-जहां विकास की संभावनायें थीं वहां तेजी से कल कारखाने खुलने लगे, विभिन्न प्रकार के शैक्षिक एवं प्रशिक्षण संस्थानों की स्थापना होने लगी और अब तक वस्त्र, जूट, खाने तथा बागान आदि क्षेत्रों में ही काम हो रहा था, अब कार्यों के क्षेत्र में तेजी से बढ़ने लगे। स्वतंत्र भारत की सरकारों का नौकर पेशा वर्ग के लोगों के साथ व्यवहार ब्रिटिश हुकूमत के अधिकारियों की तुलना में बहुत बेहतर था। भारत की केन्द्र सरकार तथा राज्य सरकारों ने अपने-अपने क्षेत्रों में कारखानों के मालिकों, संस्थानों के प्रमुखों आदि को विभिन्न कानूनों के माध्यम से विवश किया कि वे उनमें काम करने वाले कर्मचारियों व मजदूरों को समुचित वेतन तथा सुविधायें प्रदान करें। उनके कार्यों के लिये उन्हें बोनस एक्ट द्वारा बोनस दिये जाने, की व्यवस्था की गई। फिर प्रोविडेंट फंड लाया गया। इसका लाभ कर्मचारियों को मिला। फिर ग्रेच्यूटी एक्ट आया, सभी कर्मचारियों को ग्रेच्यूटी एक्ट का लाभ मिला। वेतन मानकों में वृद्धि समय-समय पर की जाती रही तथा विशेष कार्यों के लिये कर्मचारियों व मजदूरों को पुरस्कृत भी किया जाने लगा।

इस प्रकार भारत में नौकरी पेशा वर्ग की दशाओं में सुधार हुए और अब वे गरीबी और पिछड़ेपन के चंगुल से मुक्त होने लगे। सार्वजनिक क्षेत्रों के निकायों में कर्मचारियों व मजदूरों को इतनी सुविधायें मिलने लगीं कि अब वे अन्य भारतवासियों की तुलना में बेहतर महसूस करने लगे।

1991 में देश के सामने ऐसी स्थिति आ गई कि तत्कालीन सरकार को देश की आर्थिक नीति के ढ़ाचें को पूरी तरह बदलना पड़ा। नई आर्थिक नीति की घोषणा की गई, जिसके

अंतर्गत भारत में काम करने वाले देशी तथा विदेशी निकायों के साथ उदारता बरती गई, पहले जो दवाब कम्पनियों तथा निकायों के प्रबन्धकों तथा मालिकों पर दिये जाते थे उन्हें उससे मुक्त किया गया। भारतीय अर्थव्यवस्था में यह वह मोड़ था जब नौकरशाही संस्थानों पर हावी हो गई थी और देश की अर्थव्यवस्था घाटे में चली गई थी। नौकरी-पेशा लोग सरकार के नियमों और कानूनों की आड़ में निकायों के प्रबन्धकों को इतना परेशान करने लगे थे कि सार्वजनिक क्षेत्र के अधिकतर निकाय घाटे में चले गये, निजी क्षेत्रों के निकायों के प्रबन्धकों के हाथ इतने बंधे हुए थे कि वे नौकरी-पेशा लोगों से भी ठीक से काम नहीं ले पा रहे थे। ऐसे में आर्थिक उदारीकरण की नीति लागू करके सरकार ने देश भर में चलने वाले निकायों को बचाने का प्रयास किया साथ ही दुनियां के अनेक देशों की कम्पनियों को यह संदेश दिया कि अब वे भारत में अपने नियमों व शर्तों पर काम कर सकते हैं, जिन् शर्तों पर वे चाहें उन शर्तों पर भारतीय नागरिकों को नौकरी पर रख सकते हैं जो वेतनमान व सुविधायें वे देना चाहें दे सकते हैं, भारत सरकार उन पर कोई दवाब नहीं बनायेगी।

क्योंकि भारत में औद्योगिक विकास तथा बाजार के विस्तार की बड़ी संभावनायें थीं अतः देश-विदेशों की बड़ी-बड़ी कम्पनियां तेजी से भारत में काम करने लगी और भारतीय अर्थव्यवस्था ढहने के कगार पर पहुंचते-पहुंचते बच गई। अब इस नई अर्थव्यवस्था में कर्मचारी संघों की भूमिका धीरे-धीरे कम होने लगी। सार्वजनिक क्षेत्रों के संस्थानों की दशा इतनी खराब हो चुकी थी कि उसमें से अनेक संस्थान सरकार को बन्द करने पड़े और उनमें काम करने वाले कर्मचारियों को बेरोजगार होना पड़ा। अनेक संस्थान जो घाटे में चल रहे थे उन्हें सरकार ने निजी क्षेत्र की कम्पनियों को कुछ शर्तों के साथ सौंप दिया। इस प्रकार पूरे देश में सरकार ने यह संदेश दे दिया कि अब वह नौकर-पेशा लोगों के साथ नहीं खड़ी है, वो उन संगठनों, निकायों और संस्थानों के प्रबन्धकों और मालिकों के साथ खड़ी है जो देश में नये-नये संस्थान खोल रहे हैं तथा स्वयं को सम्हाल पाने में असमर्थ सरकारी संस्थानों को चलाने की जिम्मेदारी अपने ऊपर ले रहे हैं।

इससे नौकर पेशा वर्ग को भारी झटका लगा। देश में बेरोजगारी थी। बड़ी संख्या में शिक्षित और प्रशिक्षित प्रत्याशी काम पाने का इंतजार कर रहे थे ऐसे में भारत में नये-नये संस्थान खुले और उन्होंने अपनी शर्तों पर कर्मचारियों की नियुक्तियां आरम्भ कर दीं। इसी दौर में ऐसे कर्मचारियों का काम से हटाया गया जो ठीक से काम नहीं कर रहे थे या काम करने को तैयार नहीं थे। ज्यादातर निजी कम्पनियां उन स्थानों पर काम करना चाहती थीं जहां कम से कम वेतनमानों पर कर्मठ कर्मचारी उन्हें उपलब्ध हो सकें।

निजी क्षेत्रों में काम करने वाली कुछ कम्पनियों ने नये प्रत्याशियों को रोजगार देने के स्थान पर पहले से ही काम कर रहे अनेक कर्मचारियों को नौकरी से निकाल दिया। क्योंकि इन कम्पनियों पर कोई ऐसा कानून लागू नहीं था कि वे बिना शर्त कर्मचारियों को नौकरी से न निकाल सकें। औद्योगिक इकाइयों ने भी कर्मचारियों की संख्या में कटौती कर दी और उनके स्थान पर कम वेतनमान पर नये कर्मचारियों की नियुक्ति कर ली। अब न तो सरकार कर्मचारियों के हितों की रक्षा कर पा रही थी और न ही कर्मचारी संघों को कोई पूछ रहा था। कुल मिलाकर नौकर पेशा वर्ग अपने मालिकों और प्रबन्धकों के रहमो-करम पर ही रह गया।

जहां तक कर्मचारी संघों का सवाल है उन्हें अब यूटर्न लेना पड़ा। जब कर्मचारी संघों का ब्रिटिश शासन काल में जन्म हुआ था। तब हालात अलग थे। देश में स्वाधीनता आंदोलन जोरों पर था और कर्मचारी संघ दोहरी भूमिका निभा रहे थे। एक ओर वे स्वाधीनता आंदोलन को बढ़ावा देते हुए आंदोलनकारियों की सहानुभूति अर्जित कर रहे थे। दूसरी और ब्रिटिश हुकूमत पर दवाब बना रहे थे कि वे कर्मचारियों को उचित वेतन-मान दें अच्छी

सुविधायें दे तथा उनके हितों की रक्षा करें। उन दिनों नौकर-पेशा लोग कर्मचारी संघों के सदस्य होते थे उन्हें आर्थिक सहयोग देते थे और उनके साथ कंधे से कंधा मिलाकर अपने हितों के लिये ब्रिटिश हुकूमत से संघर्ष करते थे। इसका नतीजा यह हुआ था कि कर्मचारी संघों के संचालकों का महत्व बहुत बढ़ गया था। इसीलिये ब्रिटिश हुकूमत को उनकी सुननी पड़ती थी।

लेकिन जब देश आजाद हो गया तो मजदूरों के हितों की रक्षा स्वयं सरकार करने लगी इसलिये मजदूरों ने कर्मचारी संघों को सदस्यता शुल्क तथा चंदा देना भी बंद कर दिया। यद्यपि अब भी अपनी नीतियों में बदलाव करके राष्ट्रीय और राज्य स्तरों कर्मचारी संघ काम करते रहे और बीच-बीच में हड़तालें करके कर्मचारी सरकारों को अपने इशारों पर नचाते रहे और उनसे अपने हितों और लाभों के अनुकूल फैसले करवाते रहे।

परन्तु 1991 में नई आर्थिक नीतियां लागू होने के बाद नौकरी पेशा वर्ग सीधे-सीधे दवाब में आ गया। अब न सरकार उनके साथ खड़ी थी न निजी कम्पनियों के मालिक व प्रबंधक। कर्मचारियों संघ धीरे-धीरे अपना प्रभाव खो चुके थे और अब उनका दखल बहुत कम हो गया था।

21वीं सदी में आते-आते भारत में नई औद्योगिक इकाइयां जन्म ले चुकी हैं, नये निकाय अपनी शर्तों पर काम कर रहे हैं और अब कर्मचारी संघों का कोई मतलब नहीं रह गया। अब यदि बचे-खुचे कर्मचारी संघ जो अपनी अंतिम सांसे गिन रहे हैं यदि वे अब भी जिन्दा रहना चाहते हैं तो वे एक काम कर सकते हैं। इस समय असंगठित क्षेत्र में काम करने वाले मजदूर और कर्मचारी बड़े संकट में हैं, कर्मचारी संघ उन्हें अपने विश्वास में लेकर उन्हें अपना सदस्य बनाकर उनके हितों के लिये नये-नये मालिकों से संपर्क कर सकते हैं। लेकिन इसके लिये उन्हें अपने काम करने का तरीका बदलना होगा। असंगठित क्षेत्र में काम करने के इच्छुक लोगों को इस तरह प्रशिक्षित करना होगा कि उनकी कार्यक्षमता में वृद्धि हो जाय और उन्हें अपने कामों के अनुरूप सही वेतन-मान और सुविधायें मिलें।

बोध प्रश्न 3

नोट :1) अपने उत्तरों के लिए नीचे दिए गए स्थान का प्रयोग कीजिए।

2) इकाई के अंत में दिए गए उत्तरों से अपने उत्तर मिलाइए।

i) दो ऐसे घटकों के नाम बताइए जिन्होंने भारत में औद्योगिकरण के लिए रास्ता बनाया। केवल तीन पंक्तियों में उत्तर दीजिए।

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

ii) उन चार क्षेत्रों के नाम जिनमें सबसे पहले औद्योगीकरण हुआ। केवल तीन पंक्तियों में उत्तर दीजिए।

.....

.....

.....

.....

.....

iii) उन दो घटकों के नाम बताइये जिन्होंने भारत में व्यवसायी वर्ग या व्यावसायिक वर्ग को जन्म दिया।

.....

.....

.....

.....

.....

iv) भारत में छोटे व्यापारियों और दुकानदारों के वर्ग का उदय किस प्रकार हुआ? केवल तीन पंक्तियों में उत्तर दीजिए।

.....

.....

.....

.....

.....

5.7 सारांश

आधुनिक भारत में सामाजिक वर्ग विशेष स्थान रखते हैं। हर युग में सामाजिक वर्गों का अस्तित्व रहा है। आज जो वर्ग हम भारतीय समाज में देख रहे उन सबकी जड़े ब्रिटिश शासन काल से जुड़ी हैं।

इसीलिए हमने ब्रिटिश शासन काल के भारत में सामाजिक वर्गों की संरचना पर पड़ने वाले प्रभावों का हमने विश्लेषण किया है। इस संदर्भ में हमने ब्रिटिश शासन काल में नई अर्थ व्यवस्था के उदय की बात उठाई है। इसका प्रभाव भारत की कृषि व्यवस्था पर पड़ा। ब्रिटिश शासन काल में किये गये भूमि सुधारों ने कृषि भूमि निजी सम्पत्ति की स्थिति में पहुंचा दिया, इससे नये प्रकार की कर-व्यवस्था कृषि मामलों में पैदा हुई और समय के साथ-साथ परिवर्तित होते-होते आजादी के बाद कृषि भूमि का व्यवसायीकरण हो गया।

अंग्रेजी शासन काल में भारतीय अर्थव्यवस्था में परिवर्तन करने का दूसरा परिणाम यह हुआ कि भारत में व्यापार तथा वाणिज्य को बढ़ावा मिला, रेलवे का विस्तार हुआ तथा उसके फलस्वरूप औद्योगिक संस्थानों का विकास हुआ। आधुनिक शिक्षा प्रणाली का लागू होना एक अन्य सामाजिक बल था जिसने भारत ने नये वर्ग को आकार दिया।

इसी संदर्भ में भारत के सामाजिक वर्गों की बीच असमानता की स्थिति को रेखांकित किया है। भारत के विभिन्न भागों व समुदायों में वर्गीय असमानता देखने को मिलती है।

इसके साथ ही हमने भारत में ग्रामीण अंचलों के वर्गों का अध्ययन किया। हमने इन अंचलों में उत्पन्न हुये वर्गों को पांच भागों में बांटा। भूस्वामी (जमींदार), किसान, जोतदार (या किराये पर जमीन लेकर उसमें फसलें उगाने वाले, कृषि मजदूर तथा हाथ के कारीगर। हर वर्ग के उदय के संदर्भ के बारे में बताया गया तथा उसकी चरित्र की व्याख्या की गई।

आजादी के बाद उनके स्वरूप तथा प्रकृति में जो बदलाव आये उन्हें भी रेखांकित किया गया। इसी प्रकार शहरी वर्गों को भी पांच श्रेणियों में बांटा गया। ये पांच श्रेणियां हैं - वाणिज्यिक तथा औद्योगिक वर्ग, निगमित क्षेत्र, व्यावसायिक वर्ग, छोटे व्यापारी - दुकानदार तथा असंगठित श्रमिक तथा नौकर पेशा वर्ग। इनमें से प्रत्येक वर्ग के उदय के संदर्भों को उजागर किया गया तथा उनके चरित्रों की व्याख्या की गई तथा आजादी के बाद स्वतंत्र भारत में उनके कैसे-कैसे बदलाव आये, इस पर प्रकाश डाला गया।

5.8 संदर्भ

बैटली ए, 1974, स्टडीज़ इन इंडिया – एग्रियत सोशल स्ट्रक्चर ओयूपी दिल्ली, चैप्टर III

देसाई ए आर, 1987, सोशल बैकग्राउंड ऑफ इंडियन नेशनेलिज़्म, पॉपुलर प्रकाशन, मुम्बई, चैप्टर III-XI

मिश्रा बी बी, 1978, द इंडियन मिडिल क्लास, ओयूपी दिल्ली इंट्रोडक्शन एण्ड पार्ट II

पाठक अविजीत, 1998, इंडियन मॉडर्निटी : कंट्राडिक्शन्स, पेराडॉक्सेज़ एण्ड पॉसिबिलिटीज़, ज्ञान, नई दिल्ली

सेन सुनील, 1979, एग्रेरियन रिलेक्शन्स इन इंडिया, पीपुल्स पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली, चैप्टर्स III & II

सिंह योगेंद्र, 1977, मॉड्रनाइजेशन ऑफ इंडियन ट्रेडीशन, थाम्सन प्रैस, फरीदाबाद - चैप्टर V

सिंह योगेन्द्र, 1988, सोशल स्ट्रेटिफिकेशन एण्ड चेंग इन इंडिया मनोहर, दिल्ली, पृष्ठ : 1- 90

सिंह योगेन्द्र, 2000, कल्चर चेंज इन इंडिया : आइडोंटिटी एण्ड ग्लोबलाइजेशन, रावत पब्लिकेशन, जयपुर

5.9 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

i) सामाजिक वर्ग एक प्रकार का सामाजिक समूह ही है जिसे न तो कानूनी तौर पर व्याख्यायित किया गया है, न ही उसे धार्मिक मान्यता मिली है। यह एक तरह के उन लोगों का समूह होता है जो समाज में एक जैसी हैसियत रखते हैं। इस समूह के लोग आपस में एक दूसरे से खुले होते हैं, जो भी इनके जैसी जीवन शैली में जीना पसंद करता है तथा वैसी ही वित्तीय हैसियत रखता है, वह इस वर्ग में शामिल हो सकता है। एक समाज में सामाजिक वर्ग की पहचान उसके आर्थिक स्तर तथा आमदनी के संसाधनों के आधार पर की जाती है। औद्योगिक समाजों में वर्गों का उदय होना स्वाभाविक है।

ii) भारत में सामाजिक वर्गों के उदय के लिए जो कारण जिम्मेदार हैं उनमें से कुछ कारण हैं – अ) भूमि – व्यवस्था में लाये गये परिवर्तन, ब) व्यापार एवं वाणिज्य, स) औद्योगीकरण, द) राज्य व प्रशासनिक प्रणाली, य) आधुनिक शिक्षा।

iii) वे दो क्षेत्र जिनमें सामाजिक वर्गों का असमान विकास हुआ वे इस प्रकार हैं - एक है भारत के भौगोलिक विविधता वाले क्षेत्र और दूसरा है - भारत के विभिन्न समुदायों वाले क्षेत्र।

बोध प्रश्न 2

i) रैयतबाड़ी बन्दोवस्त ब्रिटिश हुकूमत द्वारा लागू किया गया एक भूमि व्यवस्था कानून था। इस बन्दोवस्त के अनुसार कृषि भूमि का दायित्व उन्हीं किसानों को दे दिया गया जो उस पर खेती करते थे।

ii) स्थायी बन्दोवस्त नामक भूमि सुधार कानून ब्रिटिश सरकार द्वारा भारत में लागू किया था। इस कानून के अनुसार जमीनों के मालिकाना हक जमीदारों को दे दिये गये और यह शर्त रखी गई कि इसके बदले जमीदार अपने अधीन जमीन पर ब्रिटिश सरकार को कर देंगे।

iii) संपन्न किसान वे होते हैं जिनके अधीन बहुत जमीन होती है। वे स्वयं खेतों में हल नहीं चलाते बल्कि वे कृषि मजदूरों को अपनी जमीन पर खेती करने के लिये नौकरी पर रखते हैं। वे केवल उनके काम की देखरेख करते हैं। वे कृषि भूमि के विकास तथा उससे अधिक से अधिक फसल लेने के लिये भूमि का प्रबंधन करते हैं और अच्छी फसल प्राप्त करते हैं। दूसरी ओर मध्यमवर्गीय किसानों के पास थोड़ी जमीन होती है वे उस जमीन पर स्वयं खेती करते है और उनके परिवार के सदस्य भी खेती के काम में उनका हाथ बंटाते हैं।

बोध प्रश्न 3

i) वे दो घटक जो भारत में औद्योगिकरण के लिये जिम्मेदार थे, वे हैं रेलवे लाइनों का बिछाया जाना तथा पूंजी अर्जित करना।

ii) वे चार क्षेत्र जिनमें सबसे पहले औद्योगिकरण हुआ हैं - अ) बागान, ब) कपास, स) जूट, द) खदान।

iii) वे घटक जिनकी वजह से भारत में व्यावसायिक वर्गों का उदय हुआ है - अ) व्यापार, वाणिज्य तथा उद्योग, ब) राज्य एवं प्रशासनिक प्रणाली।

iv) शहरों और महानगरों का बड़े पैमाने पर विकास और विस्तार हुआ तो भारत में छोटे व्यापारी और दुकानदारों के वर्ग का उदय हुआ।

अन्य संदर्भ

'ट्राइव एण्ड कास्ट इन इण्डिया' इन कांस्टीट्यूशन टू इण्डियन सोसायटी वोल्यूम नं. 5, पेज नं. 7-19, एफ. जी. बेली, 1961।

द सैड्यूल्ड ट्राइब्स, पॉपुलर प्रकाशान प्राइवेट लिमिटेड मुम्बई – जी. एस. हुरी, 1963।

कास्ट इन मॉडर्न इण्डिया एण्ड अदर ऐसेज, मीडिया प्रकाशन मुम्बई – एम. एन. श्रीनिवास, 1962।

रिलीजन एण्ड सोसायटी अमंगद कूर्गस ऑफ साउथ इण्डिया मीडिया प्रमोट से एण्ड पब्लिशर्स प्राइवेट लिमिटेड मुम्बई - एम. एन. श्रीनिवास : 1952।

स्टडीज़ इन इण्डिया एग्रियनसोशल स्ट्रक्चर ओ. यू. पी. दिल्ली चैप्टर III ए. बेटिली, 1974।

सोशल बैकग्राउण्ड ऑफ इण्डियन नेशनेलिज्म, पॉपुलर प्रकाशन मुम्बई चैप्टर्स III-XI - ए. आर. देसाई।

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY